

UNIVERSAL  
LIBRARY

OU  
180988

UNIVERSAL  
LIBRARY



कृष्णा-वियोगिनी  
एकांकी नाटक

इलाहाबाद लॉ जर्नल

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82 / M 22 K Accession No. G. H. 1508

Author मैणवाल, हरिनारायण ।

Title कृष्ण - विद्योगिनी । 1953

This book should be returned on or before the date  
last marked below.



# कृष्णा-वियोगिनी

[ एकांकी नाटक ]



लेखक

हरिनारायण मैणवाल, एम० ए०

सम्पादक : "प्रगतिशील" जयपुर



प्रकाशक

इलाहाबाद लॉ जर्नल कं० लि०

इ ला हा बा द

प्रथमवार ]

१९५३

[ मूल्य १।। ]

---

---

सर्वाधिकार सुरक्षित

---

---

मुद्रक तथा प्रकाशक  
जे० के० शर्मा, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१. भूमिका .. .	३-२४
२. नेताजी और आज़ाद हिन्द फ़ौज ..	२५-४०
३. कौंसिलर .. .	४१-५१
४. कृष्ण-वियोगिनी .. .	५३-६२
५. बालि-वध .. .	६३-७६
६. कौटिल्य .. .	७७-९२
७. ताड-गुड़ .. .	९३-१०६
८. साथी .. .	१०७-११६
९. हृदय परिवर्तन .. .	११७-१२८



# भूमिका

## मैणवाल के एकांकियों पर एक दृष्टि

[ प्रो० श्री रामचरण महेन्द्र, एम. ए., रिसर्च  
स्कारलर, हर्बर्ट कालिज, कोटा ]

### जीवन का दारुण सत्य और आशा का सन्देश

मैणवालजी मौलिक एकांकी सृजन की प्रतिभा लेकर हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए हैं। यद्यपि आप पाश्चात्य टेकनिक से प्रभावित हैं, किन्तु आपने अपने पथ का निर्धारण करने में किसी भी पाश्चात्य एकांकीकार का अनुकरण नहीं किया है। ऐतिहासिक एवं पौराणिक एकांकियों में भी आपने निज-कल्पना और प्रतिभा के स्पर्श से नवीनता की सृष्टि की है। आपकी कल्पना और अनुभव के आधार पर खड़े होने वाले सामाजिक एवं प्रचारात्मक एकांकियों के सम्बन्ध में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उनका आधार ठोस जीवन है। यहाँ भारतीय जन-समाज के कठोर जीवन की निर्मम भाँकी हमें दी गई है। इन एकांकियों में जीवन का दारुण सत्य है, साथ ही आशा का सन्देश भी।

### ‘प्रसाद’ का प्रभाव

मैणवालजी के प्रारम्भिक एकांकियों पर “प्रसाद” का प्रभाव स्पष्ट है। “प्रसाद” की नाट्य-पद्धति की कहानियों के नाटकत्व तथा भाषा की रूपमाधुरी, जिन्दादिली, संस्कृति-प्रेम का प्रभाव कहीं-कहीं मुखरित हो गया है। हार्डी (Thomas Hardy) का दुःखवाद कहीं-कहीं आपकी विचारधारा को स्पर्श करता है, किन्तु “प्रसाद”-साहित्य के अनुशीलन की प्रतिक्रिया ने आपको हिन्दी-नाट्य संसार में एक आदर्शोन्मुख आशावादी व्यक्तित्व बना दिया है। यही कारण है कि आपके करुण और दुखान्त एकांकियों में भी आशा की स्वर्ण-रेख चमकती है।

### पद्धति एवं टेकनिक

टेकनिक की दृष्टि से मैणवालजी का योग चिरस्मरणीय है। अंग्रेजी पद्धति के अनुसार आप कई दृश्य वाले तथा अधिक पात्रों वाले लम्बे-लम्बे विचार या मत-विशेष के प्रतिपादन से बोझिल एकांकियों की अपेक्षा एक दृश्य तथा कम पात्रों वाले एकांकी लिखना अधिक पसन्द करते हैं। छोटे, किन्तु सम्बेदना की तीव्रता सम्हाले हुए तीखे एकांकियों का निर्माण करना आपकी विशेषता है। आप दो-तीन पात्रों की सहायता से एक ही स्थान पर, उसी समय घटनाओं को जोड़-तोड़ कर चरित्र की किसी विशेष वृत्ति एवं मनो-

दशा का मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन कर देते हैं। ऐसे एकांकीकार को तीव्र सम्बेदना (Acute Sensation) और प्रभाव की ऋजुता का भी पूरा-पूरा ध्यान रहता है; क्योंकि प्रधानतः इन्हीं मूल तत्त्वों पर उसकी सफलता या असफलता आंकी जा सकती है।'

### मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ

मैणवाल्जी की मनोवृत्ति मनोवैज्ञानिक है। अपने पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों में भी कथानक पुराना

---

“मैं उस समय का स्वप्न देखता हूँ, जब भारतवासी बेरोजगार, अकर्मण्य, आलसी नहीं रहेंगे। एक दिन भारत रूस और अमेरिका के समान उन्नत और समृद्धिशाली होगा और भारतवासियों को एक क्षण का भी अवकाश नहीं मिलेगा। राष्ट्र के सम्मुख काम ज्यादा होगा तथा मानव कम रहेंगे। ऐसे युग में देशवासियों को रामायण, महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थ, या लम्बे उपन्यास, नाटक इत्यादि को पढ़ने का समय कहाँ मिलेगा? ऐसे नितान्त व्यावहारिक जीवन को कदाचित् ये कुछ ही क्षणों में मजा-चखाने वाले एकांकी ज्यादा पसन्द होंगे। ऐसे भौतिकवादी एवं यथार्थवादी जीवन में ये एकांकी अतीत संस्कृति का सन्देश सुनाने में सफल हो सकेंगे। अपने भावी एकांकियों में मैं कुछ ही क्षणों में पूर्ण आनन्द देने का प्रयास करूँगा”—हरिनारायण मैणवाल (पत्र से)

होते हुए भी आपने मौलिक भाव और मधुर अनुभूतियाँ भर दी हैं। उनमें नए प्राण आ गये हैं। मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रसूत “कृष्णवियोगिनी” भावव्यंजना तथा शैली में चिर नवीन है। अनुभूति की सूक्ष्मता मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है। अनुभूति के भावात्मक होने के कारण कल्पना का सुचारु उपयोग हुआ है। गूढ़ आत्मानुभूति का करुणात्मक और नाटकीय निवेदन कितना भावमय हो सकता है, इसका सफल प्रमाण “कृष्ण-वियोगिनी” का अन्तिम वक्तव्य है, जहाँ प्रमादनी राधा का चित्रण किया गया है। आपकी केवल अनुभूति ही तरल नहीं, उसके पीछे बौद्धिक तत्त्व भी है। आपके समस्या नाटकों में यह ठोस बौद्धिक तत्त्व नाना रूप ग्रहण कर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। इन नाटकों में आपने समाज के भीतरी पर्व फाड़ कर दारुण अत्याचार और समाज की भग्न-जीर्ण अट्टालिकाएँ दिखाई हैं।

“प्रसाद” का प्रभाव दो रूपों में मूर्त हो उठा है (१) विचारधारा में भारतीय गौरव, संस्कृति एवं भावात्मक आदर्शवाद। इन एकांकियों में विचार-गौरव तथा प्राचीन आर्य-संस्कृति के सम्बन्ध में भावात्मक विवेचना है। नाट्यकार ने भारतीय संस्कृति के प्रतीक सांस्कृतिक-पौराणिक कथानकों को चुना है।

“प्रतिज्ञा”, “शत्रु से प्रेम”, “पर्जन्य-यज्ञ”, “पितृ-भक्त”—में प्रसाद के नाटकों वाली पद्धति स्पष्ट है।

वही समाज की प्रवृत्तियों का सूक्ष्म निरीक्षण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, सरसता के लिये मधुर गीतों की योजना, सांस्कृतिक एवं भारतीय हिन्दू इतिहास के कथानक, गुरु-गभीर संस्कृत-मयी भाषा के प्रयोग, स्वगत इत्यादि। सांस्कृतिक नाटकों में प्रौढ़ता, रस और सगीन का अपूर्व सम्मिश्रण है।

### ‘मैणवाल’ की विशेषता

अभी हिन्दी साहित्य में ऐसे एकाकियों की कमी है, जो तीव्र सम्वेदना, ( Acute Sensation ) प्रभाव की ऋजुता, आकस्मिकता, गोपन-व्यजना आदि कहानी के-से तत्त्वों को रखते हुए केवल एक दृश्य से अधिक की कामना नहीं रखते। एक दृश्य में ही वे भरपूर और अपने आपमें हर प्रकार पूर्ण होते हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैणवालजी एकाकी-क्षेत्र में अग्रसर हुए हैं। यही इनकी विशेषता है।

आपके एकाकियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

### ( १ ) सामाजिक-समस्या-एकाकी

( १ ) सौभाग्य-सिन्दूर ( २ ) मोटर साइकिल ( ३ ) गरीब का संसार ( ४ ) सहशिक्षा ( ५ ) नेतार्जा और आज्ञाद हिन्द फ़ौज ( ६ ) गृहस्थी ( ७ ) सार्था ( ८ ) ताड़-गुड़ ( ९ ) कौंसिलर।

## (२) सांस्कृतिक-पौराणिक आदर्शवाद

(१) प्रतिज्ञा (२) शत्रु से प्रेम (३) पर्जन्य यज्ञ (४)  
गुरु-दक्षिणा (५) पितृ-भक्त (६) कृष्ण-वियोगिनी—

## ऐतिहासिक

(१) खुसरू की आँखें।

## समस्या-एकांकी

श्री मैणवाल के सामाजिक समस्या-नाटकों में नाना समस्याएँ उभारी गई हैं। निष्पक्ष आलोचक की दृष्टि से वे इनका चित्रण कर देते हैं; समस्या के सुलभाव के संकेत भी कर देते हैं, किन्तु स्पष्ट नहीं कहते। समाज का पर्दाफाश कर वे हमें प्रताड़ित वर्ग की एक भाँकी प्रस्तुत कर देते हैं, जैसे हमसे कहते हों, “समाज का रुपहला कृत्रिम स्वरूप तो आप देखते ही हैं, युगों-युगों से उसके अन्तराल में संचित इस कड़वाहट और विद्रूपता को भी आपने देखा है?” पूँजीवाद के विरुद्ध आपने आवाज़ ऊँची की है। आज मध्यवर्ग के करोड़ों गृहस्थ मँहगाई और भूठा दिखावा की चक्की के दो पाटों में निर्ममता से पीसे जा रहे हैं। उनका स्वर आप मुखरित कर सके हैं। समाज में जो Exploitation, चल रहा है, उसका चित्रण इन एकांकियों में उपलब्ध है।

जिन समस्याओं को आपने अपने एकांकियों का विषय बनाया है, उनमें से ये प्रमुख हैं :—विधवाओं की दुर्दशा, पूँजीवाद के अत्याचार, किराया, मँहगाई, मध्यवर्ग का उत्पीड़न, आधुनिक सहशिक्षा की खराबियाँ, उच्च क्षेत्रों के भ्रष्टाचार, सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की दुर्बलताएँ, अरीबी की असमर्थता, भयंकरता, इत्यादि। ऐतिहासिक नाटकों में मुस्लिम संस्कृति तथा मुगल साम्राज्य की समस्याएँ, हिन्दू-मुस्लिम एकता का न होना, मुगलकालीन राजाओं के पारस्परिक विद्वेष-षड़यंत्र को समझाने का प्रयत्न किया गया है। पौराणिक नाटकों में अतीत भारतीय सांस्कृतिक उच्चता की ओजपूर्ण भाँकी प्रस्तुत की गई है। “खुसरू की आँखें” में नाट्यकार ने अकबर की वेदनाओं, जटिल समस्याओं, सम्राट के घात-प्रतिघातों को मुखरित किया है।

### गृहस्थी

“गृहस्थी” एक प्रगतिशील एकांकी है, जिसमें नाट्यकार ने आधुनिक मध्यवर्ग के नौकरी-पेशा के जीवन का एक यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। दिन भर कार्य करने के पश्चात् वह १५०) कमाता है, जिसमें कठिनता से घर का व्यय चलता है। कर्ज़ बढ़ता है, किराया, दूध के पैसे भी नहीं दे पाता, धनवान के बच्चे उसके बच्चों को चिढ़ाते

हैं। इस नाटक के रामभरोसे उन मध्यम श्रेणी के गृहस्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो मँहगाई, रिश्तेदारी, बाहरी टीपटाप, अफसरों के अत्याचारों और सामान्य गृहस्थों की ज़रूरतों भी पूर्ण नहीं कर पाते। यह मध्यम श्रेणी के एक गृहस्थी का चित्र है।

कुछ समस्याओं की ओर निर्देश निम्न वक्तव्यों में देखिये :—

“यह सन् १९४९ है। एक सामान्य गृहस्थ तलवार की धार पर से गुज़र रहा है। नौकरी बहुत बुरी चीज़ है। धनवान गरीब की सदैव हड्डियाँ चूसने को प्रस्तुत है, अफसर सदा मातहत का दिल दुखाने में अपना गौरव समझता है।”

“धनवान के बच्चे तक दुष्ट होते हैं। वे अपनी समृद्धि बता कर गरीब के बालकों को बार-बार चिढ़ाते हैं। इससे दीन बालकों की आत्मा निर्बल हो जाती है, उनका अगो जाकर साहस टूट जाता है।”

गरीबों का रक्त-शोषण करने वालों के विरुद्ध लेखक की पुकार निम्न शब्दों में व्यक्त हुई है :—

“जी चाहता है इन भूखे व्याघ्रों की लाशें कर दूँ, खून की नदियाँ बहा दूँ और अन्त में जेल के सीखचों में बन्द होकर सड़-सड़ कर मर जाऊँ या हम सब एक साथ आत्म-हत्या कर लें। पढ़ा-लिखा हूँ, दिमाग रखता हूँ,

शरीर काम करना चाहता है, मरता हूँ, पचता हूँ, पर, फिर भी पेट खाली है। बालक बिलख कर रह जाते हैं, स्त्री मन मार कर पत्थर-सी हो गई है और जीवन निरस है। फिर, ऐसे जीवन से कौन-सा लाभ होगा ?

## सहशिक्षा

“आधुनिक सहशिक्षा” में वयस्क लड़के-लड़कियों की सहशिक्षा के प्रश्न को उठाया गया है। प्रायः छोटी-छोटी बातों पर लड़के-लड़कियों में कटुता और संघर्ष चलता है। लड़कियाँ छोटी-छोटी बातों की शिकायतें करती हैं। भारत में लड़के और लड़कियों के इस संघर्ष की समस्या का हल नाट्यकार ने इन शब्दों में किया है :—

“भारतीय लड़कियाँ सहशिक्षा के अयोग्य हैं। सहशिक्षा पाश्चात्य सभ्यता की एक देन है। जब तक लड़कियाँ पाश्चात्य महिलाओं की तरह झूठी लज्जा को त्याग कर स्वयं को निडर नहीं बना लेंगी, तब तक सहशिक्षा का सफल होना कठिन ही नहीं असंभव है . . . स्त्री-पुरुष का भेद भूल कर लड़कियों को लड़कों के वातावरण में घुल जाना चाहिए।

“सुन्दर एवं अप्राप्य वस्तु में आकर्षण होता है, किन्तु जब वह वस्तु सदा समीप रहने लगती है, तो आकर्षण की वह तीव्र मात्रा क्रमशः स्वतः ही मिट जाती है। दूसरा

प्रभाव चरित्र एवं व्यक्तित्व का पड़ता है, जिसकी क्षमता के विरुद्ध पुरुष तो क्या देवता भी नहीं ठहर सकते। सीता के पावन चरित्र ने रावण की पापात्मा को परास्त किया; इसी प्रकार सावित्री, द्रौपदी और पद्मिनी आदि भारतीय ललनाओं ने अपनी पवित्र चरित्र-शक्ति के परिचय दिये हैं. . . .।”

नाट्यकार का उद्देश्य यहीं हृदय-परिवर्तन दिखाना है। जब तक लड़के लड़कियों का हृदय-परिवर्तन नहीं होता, तब तक यह समस्या नहीं सुलभ सकती। यदि लड़कियाँ चाहती हैं कि वे लड़कों के साथ बैठ कर शिक्षा प्राप्त करें, तो उन्हें प्रथम स्वयं को सहशिक्षा के योग्य बनाना होगा।

### साथी

“साथी” (१९५०) में जेल की चारदीवारी के अन्दर होने वाले अत्याचार के साथ दो कैदियों की आप-बीती, भारत के १९४९-५० के राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक वातावरण को चित्रित किया है। दो कैदी, एक स्त्री, दूसरा पुरुष, जेल की चार दीवारी के भीतर ही एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते हैं, प्रेम का अंकुर फूटता है, किन्तु क्रूर जेलर द्वारा कुचल दिया जाता है। इस एकांकी का नायक एक राजद्रोही है। उसके कैद होने का कारण उसी से सुनिये। भारत को आज़ादी मिलने के बाद की राजनैतिक अवस्था का इससे सही अनुमान हो सकता है:—

“साथी—भूल से समझ बैठा था कि आज़ादी मिल गई है। विचार-स्वतन्त्रता और सत्य की बेड़ियाँ काट कर ग़रीबों की आवाज़ बुलन्द करने लगा। हड़तालें हुई; मिल ठप्प थी, रेलों के चक्के जाम हो गये और जनता की बुलन्द आवाज़ से आकाश फटने लगा। अवसरवादी सफ़ेदपोश घबरा उठे, उनकी कुर्सियाँ उलटने लगीं। और, मोटे पेट का पानी सूखने लगा। बस, फिर क्या था, अँग्रेज़ों जैसा दमन-चक्र चला, विचार-स्वतन्त्रता का गला घोट दिया गया और सत्य के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं। . . . मैं एक भयंकर राजद्रोही हूँ।”

### ताड़-गुड़

“ताड़-गुड़” (१९५०) प्रचार की चीज़ है, जिसमें ताड़-गुड़ की उपयोगिता, महत्त्व, लाभों को नाटकत्व प्रदान कर दिया गया है। इसका प्रधान पात्र सम्पादक कहता है—

“ताड़-गुड़-उद्योग अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन का सहायक है। गन्ने की काश्त पर ताड़-गुड़ उद्योग का सीधा प्रभाव यह पड़ेगा कि किसान खेतों में गन्ना बोने के

बजाय, अन्न उत्पन्न करेगे; क्यों कि आजकल हज़ारों एकड़ उपजाऊ ज़मीन गन्ने की काश्त ही घेर लेती है। ज्यों-ज्यों ताड़-गुड़ उद्योग बढ़ेगा, त्यों-त्यों गन्ने की काश्त घटेगी और ज्यादा अन्न उत्पन्न होगा... गन्ने के उगाने में, सींचने में, काटने में, पेलने में और रक्षा करने में बीसों भंभट करने पड़ते हैं। वह तो किसान के खून का पानी बना देता है, पर खजूर के पेड़ लाखों की संख्या में खड़े हैं.... ये खजूर के वृक्ष राजस्थान की मरुभूमि में अमृत देंगे।”

इस एकांकी में योजनाओं की सफलता अच्छे कार्यकर्ताओं के ऊपर निर्भर है, इस तत्त्व को स्पष्ट कर दिया गया है।

### कौंसिलर

“कौंसिलर” में एक आदर्शवादी नवयुवक म्यूनिसिपल कौंसिलर का चित्र है। म्यूनिसिपैलिटी में जो रिश्त, अत्याचार और लूटने का वातावरण रहता है, उसका चित्रण करना लेखक का उद्देश्य है। इसमें पं० विश्वेश्वर के रूप में जन-सेवक के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। वह त्यागमय होकर आदर्श ही गया है। इसमें हम उनके चरित्र की निष्ठा, बलिदान, सचाई और कठिनाइयों, परिस्थितियों की भीषणता देखते हैं। पं० विश्वेश्वर रिश्तों के प्रलोभनों से बचते हुए त्याग और जन-सेवा

के मार्ग पर अटल बने रहते हैं। यह चित्र कर्तृत्व की प्रेरणा के लिए चित्रित किया गया है। यथार्थवादी आदर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है। यही प्रवृत्ति विश्वेश्वर के समस्त वक्तव्यों में परिलक्षित होती है :—जैसे—

“क्या आप चाहते हैं कि मैं अपना ईमान कुछ चाँदी के टुकड़ों में बेच दूँ; जिनकी सेवा करने को खड़ा हुआ हूँ, उन पर ही जुर्म कल्लूँ और अपने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को धोखा देने लगूँ। सचाई और ईमान पर चलने वालों की दशा तो सदा खराब रहती है, पर उनका सिर सदा ऊँचा रहता है। यदि परिस्थिति को अपने अनुकूल न बना सका, तो मैं इस क्षेत्र से दूर हो जाऊँगा। पर, मुझे पूरा भरोसा है कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी।”

मैं अपना कर्तव्य-पालन कर रहा हूँ और भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे हैं। सच्चे लोक-सेवकों, निस्वार्थी कार्यकर्ताओं और होनहार लेखकों के मूल्य को अभी हमारे राष्ट्र ने नहीं पहिचाना है।”

घर-गृहस्थी तथा संसार की विषमताओं में पिसता हुआ भी विश्वेश्वर अपने आदर्श के लिए युद्ध करता है। उसका आदर्शवाद यथार्थवाद के भीतर से ही पनपता है। अवसाद के साथ ही आशा की एक पतली रेखा उसके जीवन-दर्शन में वर्तमान है।

## गरीब का संसार

“गरीब का संसार” में एक निर्धन आत्म-सम्मानी विद्यार्थी के बलिदान, हृदयहीनता, और अवसाद-पूर्ण क्षणों की एक भाँकी है। दीनानाथ के ये शब्द कितने भव्य हैं—

“मैं गरीब अवश्य हूँ, परन्तु गरीब की आत्मा पूंजीपतियों की आत्मा से अधिक बलवान होती है। इस प्रकार शिक्षा के आधार पर मैं दीनता से कब तक युद्ध करता रहूँगा ? मैंने अपने स्वाभिमान को अभी नहीं बेचा है।”

गरीबी की चक्की में दीनानाथ और उसकी माँ पिस जाते हैं, लक्ष्मी के पुजारी उनकी पतितावस्था पर हँसी करते हैं, उन्हें घृणा की वस्तु समझते हैं। गरीबों की हड्डियाँ चूसने वाले हृदयहीनों का बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। पूंजीवाद के विरुद्ध नाट्यकार के हृदयमें जो अग्नि है, वह यहाँ सुलग उठी है।

## सौभाग्य-सिन्दूर

“सौभाग्य-सिन्दूर” हिन्दू समाज में विधवा की पतितावस्था पर आधारित है। वैधव्य जीवन किस प्रकार अभिशाप बन जाता है; प्रकृति आकर्षण की ओर खींचती है, मन में रस का उफान रहता है, किन्तु यह सब हृदय ही हृदय में कुचला जाने के लिए होता है। विधवा की

अवसादपूर्ण गाथा इस एकांकी में भर दी गई है। लोक-समाज की आलोचना की पद्धति का भी इसमें चित्रण किया गया है।

### निष्पक्ष सामाजिक आलोचना

मैणवालजी ने समाज के गलित अंगों की ओर सफलतापूर्वक निर्देश किया है। आप सामाजिक विद्रूपताओं की ओर निर्देश भर कर देते हैं। सामाजिक विषमताओं का यथातथ्य वर्णन उनके साहित्य में मिलता है। उनमें जोला और गाल्सवर्दी जैसी तटस्थता है। उनका अनुर्विक्षण तीव्र और पारदर्शी है—बाहर की तहों को बीधता हुआ, वह उस मर्म पर आघात करता है, जहाँ विनाश और पतन के कीटाणु समाज की जड़ काटने पर तुले हुए हैं। मैणवाल का यथार्थवाद उनकी बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है।

### मौलिक एकांकीकार

अपने पौराणिक एकांकियों में भी मैणवालजी ने मौलिकता का समावेश किया है। “कृष्ण-वियोगिनी” की नायिका, राधा वियोग की अग्नि में जलने वाली निश्चेष्ट स्त्री न होकर लोकसेवा में तत्पर उत्साही कर्ममार्गिनी है। उसका एक वक्तव्य देखिये :—

राधा—“अरी गोपियो, यहाँ बैठी-बैठी क्यों ऊँघ रही हो? देखती नहीं . . . ब्रज का सारा गौधन जंगल

में बिखर चुका है—पशुओं की रक्षा करना है। ललिता, तुम तीनों गौधन को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं बिखरे हुए पशुओं को जंगल से ढूँढ़ कर लाती हूँ। जब ब्रजबालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूल कर लोकसेवा में जुट जायगी, तब ब्रज के उत्साह-हीन ग्वालबाल और किसानों के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयों में स्फूर्ति आ जायगी—वे अपने हल और बैलों को सम्हाल लेंगे—ब्रज पुनः हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा.... ब्रज की सुरक्षा के लिए मेरे समान समस्त ब्रजवासियों को कृष्ण बनना ही होगा।”

प्राचीन कथानकों की यह नवीन व्याख्या अभूतपूर्व है। हिन्दी में ये व्याख्याएँ ऐतिहासिक दृष्टिकोण से होती रहीं। मैणवालर्जी ने युग की बढ़ती हुई बौद्धिकता का परिचय दिया है।

### नाटकीय स्थिति की पकड़

टेकनिक की दृष्टि से मैणवालर्जी की विशेषता नाटकीय स्थिति (Dramatic Situation) की पकड़ है। पौराणिक, ऐतिहासिक तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण करते हुए आप ऐसी स्थिति का चुनाव करते हैं, जिसमें दर्शक और पाठक की समस्त मनोवृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। कथानक के प्रदर्शन में कौतूहल को विशेष स्थान दिया जाता है।

## कथोपकथन

कथोपकथन दो प्रकार के हैं। पौराणिक-सांस्कृतिक नाटकों के कथोपकथन गंभीर, साहित्यिक और भावुकता से स्निग्ध हैं। इनमें कल्पना की रंगिनी और विषय गौरव है; बुद्धि-व्यापार से अधिक विमुग्धता है। विषाद, अवसाद और क्रोध के स्थल भी बड़े तीखे और मर्मस्पर्शी हैं; जैसे—  
राक्षस—

राक्षस—“इसका परिणाम उसको भोगना ही पड़ेगा। समस्त पंचनद पदाक्रान्त होगा। यवन विजय-पताका भारत के वक्षस्थल पर मँडरायगी। यवन-कोष भारतीय श्री से सुशोभित होगा। रक्तपात और अन्याय होंगे। सीमान्त आर्यावर्त के पश्चिमी मंडल सदैव के लिए अशक्त और निर्बल हो जायेंगे।”

—प्रतिज्ञा

कहीं-कहीं अप्रस्तुत योजना का आधार प्रकृति के मनोमुग्धकारी स्वरूप को बनाया गया है। मूल विषय के वेग को प्रकट करने के लिए अप्रस्तुत प्राकृतिक व्यापारों का भी सम्मिश्रित वर्णन है, जैसे—

आचार्य—“राजन्, विलम्ब के लिए समय नहीं है। बलिदान हो, जिसके फलस्वरूप यज्ञकुंड में से छोटे-छोटे

स्फुलिंग उड़-उड़ कर संध्या की लालिमा में आर्य-गौरव की लालिमा को मिला कर उसकी सौन्दर्य-श्री को द्विगणित कर दें। भगवान् भास्कर में इसी वीर की प्रतिभा प्रवेश कर उसकी रश्मिमाला को अधिक स्वर्णिम बना देगी, वह अखिल जगत् की कान्ति होगी।”

एक वक्तव्य में गद्यकाव्य का माधुर्य देखिये—

“यौवन वसन्त की फुलवारी है—एक लहर है, जो निरन्तर नहीं बहती। पुष्पों के लिए बार-बार वसन्त आता है, समुद्र में लहरें उठती हीं रहती हैं, किन्तु जीवन-सागर में यौवन की हिलोर केवल एक बार आती है। इसके पश्चात् वृद्धा अवस्था का पदार्पण होता है। पतझड़ की तरह आशाओं का सुरम्य उद्यान शुष्क हो जाता है, उत्साह की तरंग सदैव के लिए मिट जाती है; सौन्दर्य एवं युवावस्था के सुनहरी स्वप्न केवल स्वप्नमात्र रह जाते हैं, सब अपने पराये हो जाते हैं, शिथिलता एवं निराशा का एक साथ आक्रमण होता है, फूल की विपिन्नावस्था को देखकर भ्रमर-वृन्द व्यंग्य और घृणा करते हैं और केवल शेष रह जाती है, पल्लवविहीन वृक्ष के सदृश्य यह कंकाल-सी देह। बोलो, नियति ने तुम्हें यौवन का उपहार दिया है, उसका तिरस्कार करोगी ?”

—शत्रु से प्रेम

## रस, भाषा और चरित्र

सामाजिक समस्याप्रधान नाटकों की भाषा सरल, नित्य के व्यवहार में आने वाली, आडम्बरविहीन सीधी-सादी है। कथोपकथन संक्षिप्त, मर्मस्पर्शी, वाक्वैदग्ध्ययुक्त और पात्रों की चारित्रिकता प्रकट करने वाले हैं। अकबर के द्वारा भी ऐसी भाषा का व्यवहार कराया गया है, जो हिन्दुओं के सम्पर्क में आकर वह बोल सकता था। यदि अकबर मस्तक पर हिन्दुओं का तिलक लगा सकता है और सूर्य का पूजन कर सकता है, तो वह हिन्दी भी अच्छी बोल सकता है।

“प्रसाद” से प्रभावित पौराणिक-सांस्कृतिक एकांकियों में गानों का भी प्रयोग है। ये गाने संक्षिप्त हैं। एकांकियों के छोटे कलेवर के अनुसार इन्हें छोटा रक्खा गया है। इनसे एकांकी के वातावरण में रस सृष्टि की गई है।

मैणवालजी यथार्थवादी एकांकीकार है, जिनका यथार्थवाद मनुष्य की सहज बौद्धिक प्रकृति पर आश्रित है। रोमांस और झूठी भावुकता के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं। पश्चिम के एकांकियों से जो बौद्धिक उत्तेजना हिन्दी में आई है, उसका प्रभाव इनके सामाजिक एकांकियों पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

शौं का प्रभाव इन नाटकों पर कई रूपों में पड़ा है। प्रथम ये नाटक घटना-बहुल या पात्र-बहुल न होकर विचार

और समस्या नाट्य हैं। ये बौद्धिक चिंतन के मंथन हैं। द्वितीय, उनकी शैली (पौराणिक नाटकों को छोड़ कर) यथार्थवाद की है। शाँ की भाँति कहीं-कहीं व्यंग्य और विदग्धता भी है। सामाजिक नाटक आधुनिक समस्याओं के प्रतिबिम्ब हैं। उनकी स्वाभाविकता और यथार्थवाद हमारे हृदय को स्पर्श करते हैं।

आपके एकांकी अनेक दृश्यों से बोझिल न होकर एक बड़े दृश्य में ही सब कुछ प्रस्तुत कर देते हैं। इनमें तीव्र सम्बेदना द्वारा प्रभाव में पूर्ण ऋजुता की सृष्टि की गई है। कई दृश्य वाले तथा अधिक पात्रों वाले लम्बे एकांकियों से प्रारम्भ कर मैणवालर्जी ने अपनी एकांकी-कला का विकास कर एक दृश्य वाले छोटे-छोटे मौलिक एकांकियों की सृष्टि की है। छोटे, मनोवैज्ञानिक और चरित्र-चित्रण-प्रधान नाटकों की सृष्टि इनकी विशेषता है।

**नेताजी और  
आज़ाद हिन्द फ़ौज**



## पात्र-परिचय

१. नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (भारत के एक प्रसिद्ध नेता जिन्होंने आज़ाद हिन्द फ़ौज का संगठन कर अंग्रेज़ों से युद्ध किया) ।
२. बंगाली कप्तान (आज़ाद हिन्द फ़ौज का एक सेनानायक)
३. पंजाबी कप्तान ( " " )
४. मेजर (एक अंग्रेज़ी सेनापति)
५. केप्टेन (सरकारी फ़ौज का एक हिन्दु-स्थानी सेनानायक)



# नेताजी और आज़ाद हिन्द फौज

## प्रथम दृश्य

[ आसाम की घनी पहाड़ियों की डरावनी घाटियों में आधुनिक ढंग का एक सैनिक शिविर खड़ा है। शिविर में एक अघेड़ अंग्रेज़ मेजर अपनी टेबिल पर रखे हुए युद्ध के नक्शों को झुक कर ध्यान से देख रहा है। सहसा एक गौरे अंग्रेज़ सैनिक के प्रवेश ने मेजर का ध्यान भंग किया। गौरा सैनिक हाँप रहा है। उसने मेजर को सैनिक ढंग से सलाम की ]।

गौरा सैनिक—(घबराहट से) क्या मैं भीतर आ सकता हूँ ?

मेजर—कौन ? (नक्शों को बन्द करते हुए) तुम आ गए ! मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। अरे ! तुम इतने घबरा क्यों रहे हो ? क्या किसी जापानी से मुठभेड़ हो गई ?

गौरा सैनिक—महाशय ! इस बार किसी जापानी से नहीं, एक महान् हिन्दुस्थानी से मुठभेड़ होने जा रही है।

मेजर—एक हिन्दुस्थानी! से ! यह तुम क्या कह रहे हो ?

गौरा सैनिक—मैं जो कुछ अर्ज कर रहा हूँ, वह ठीक है। हम एक ऐसे देशभक्त से लोहा लेने जा रहे हैं, जो सहस्रों जर्मनी और जापानियों से भी अधिक भयंकर है।

मेजर—ठीक है, मैं समझ गया। परन्तु, इस बात का पता हिन्दुस्थानी सैनिकों को नहीं लगना चाहिए। वास्तव में बृटिश-साम्राज्य पर एक महान् संकट आ गया है। जाति और साम्राज्य की सेवा करने का यहाँ अवसर है। शाबाश ! तुमने मुझे समय रहते सचेत कर दिया। जाओ, केप्टेन को शीघ्र मेरे पास भेजो। [गौरा सैनिक सैनिक ढंग से सलाम करके जाता है और सिगार का कस लगाता हुआ मेजर शिविर में इधर-उधर विचार-मग्न होकर टहलने लगता है। थोड़ी देर बाद एक भारतीय युवक तन कर मेजर के सामने आ खड़ा होता है]

मेजर—देखो केप्टेन ! यह मौका हाथ से न जाने पावे। इस बार तुमको जापान के एक बहुत खतरनाक अफ़सर का सामना करना पड़ेगा। जापान के इने-गिने अफ़सरों में इसकी गिनती है और खास तौर से इस मोर्चे पर लड़ने के लिए यह आया है।

[अंग्रेज मेजर सिगार के बहाने रुक कर हिन्दुस्थानी केप्टेन के चेहरे की ओर देखने लगता है। केप्टेन के मुख

पर सहसा लाली दौड़ती हुई दिखाई पड़ती है और चेहरा तमतमा उठता है ]

केप्टेन—अफ़सर ! एक खतरनाक जापानी अफ़सर !!

मेजर—हाँ, इस बार जापानी हिन्दुस्तान को गुलाम बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। यूँ तो मैं तुम लोगों से लड़ने को न कहता, क्योंकि जापानियों का साथ कुछ हिन्दुस्तानी सैनिक भी दे रहे हैं। परन्तु, तुम सोचो कि वह एक जापानी अफ़सर के मातहत लड़ रहे हैं। जापानियों ने कुछ चाँदी के टुकड़े देकर उनको अपनी ओर मिला लिया है। हम तो केवल यह चाहते हैं कि उस खतरनाक जापानी अफ़सर को तुम जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाओ। बस, हम लोगों का काम समाप्त हो जायगा।

[ केप्टेन झुक कर अपने सीने पर लगे हुए स्टार को देखता है और कन्धे पर के यूनियन जंक के बँज को हाथ से सम्भालने लगता है और सहसा एक कोई गम्भीर दृढ़ निश्चय भाल पर दिखाई पड़ता है और दूसरे ही क्षण वह छाया की तरह विलीन हो जाता है ] ।

मेजर—(दूसरी सिगार सुलगाते हुए) तुम्हारी क्रीम कितनी बहादुर और कितनी स्वाभिमानी है, केप्टेन ? वैसे मैं इस मोर्चे पर तुमसे लड़ने को न कहता, परन्तु समय बहुत कम है और थोड़ी भी देर की तो, वह जापानी अफ़सर और उसके साथी हिन्दुस्तान की सीमा में घुस जाँयगे। क्या

तुम यह सहन करोगे कि तुम्हारे जीवित रहते कोई भी जापानी तुम्हारी मातृभूमि पर अपने नापाक कदम रखे ?

कैप्टेन—(जोश से बृहत् स्वर में) नहीं, कभी नहीं !! हमारे जीवित रहते ऐसा कदापि नहीं होगा। कल प्रातःकाल हमारा आक्रमण होगा।

मेजर—ईश्वर तुम्हें शक्ति दे ! धन्यवाद। [कैप्टेन सैनिक अभिवादन करता हुआ शिविर से प्रस्थान करता है ] ।

## द्वितीय-दृश्य

[ स्थान—युद्धस्थल। समय—प्रातःकाल। अँधड़ों के मातहत लड़नेवाले हिन्दुस्थान के सैनिकों ने आजाद हिन्द फ़ौज को चारों ओर से घेर लिया है। घोर संग्राम हो रहा है और आजाद हिन्द फ़ौज के सैनिक प्राणों का मोह त्याग कर अपने आपको स्वतन्त्रता की बलिबेबी पर होम रहे हैं। बीच के एक बड़े से तम्बू के सामने नेताजी सुभाषचन्द्र बोस व्यस्त और व्यग्र मुद्रा में खड़े हैं। उनके सम्मुख दो कप्तान उपस्थित हैं। उनमें से एक बुबला-पतला लम्बा-सा बंगाली है, जिसके चेहरे से एक गहरी वेदना और भावुकता टपक रही है, दूसरा है स्वस्थ पंजाबी, जिसके चेहरे पर स्वाभिमान स्पष्ट झलक रहा है ]

बंगाली कप्तान—(टूटे हुए घेरे और क्षण-क्षण पर समीप आते हुए शत्रुओं को देख कर) मैंने पहले ही कहा था नेताजी, आप स्वयं मोर्चे पर रह कर खतरा न उठाइए, अब क्या होगा ? वायुयान केवल एक है, पेट्रोल भी समाप्त है। ओह ! नेताजी, अब भी मान जाइए, आप पर कोई भी खतरा आ गया तो क्या होगा ?

[नेताजी क्षण भर बंगाली कप्तान के भावुक चेहरे की ओर ध्यान से देखते हैं और मुस्कराने लगते हैं]

बंगाली कप्तान—नहीं, मुस्कराने की बात नहीं है। आपको अपनी जान से खेल करने का कोई अधिकार नहीं है—आपके प्राण अब स्वतंत्रता की स्वाँस बन गए हैं। आपके अमूल्य जीवन के साथ ही देश के भाग्य का भी सदैव के लिए निर्णय होने जा रहा है। (नेताजी कुछ कहना ही चाहते हैं कि मुसलमान कप्तान बोल उठता है)

पंजाबी कप्तान—और देखो, इस कम्बख्त क्रौम की नमक हलाली ! मौत की हद पारकर नेताजी यहाँ जान लड़ाकर उनकी आज़ादी के लिए लड़ रहे हैं और ये बदनसीब हिन्दुस्तानी खुद हमारे खून के प्यासे बन रहे हैं। भाई-भाई का खून बहा रहा है। खुद हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तान को गुलामी की जंजीरों से जकड़ने पर तुले हुए हैं। आज़ाद हिन्द फ़ौज को आज हिन्दुस्तानी ही मिटाने को तय्यार है। वाह रे हिन्दुस्तान !

[ लड़ाई का शोर बढ़ता है और दूर पर फटते हुए ग्रेनेडों के टुकड़े कभी-कभी दो एक गज की दूरी पर गिरते हैं। बंगाली कप्तान चारों ओर देखता है और चिन्तातुर नेत्रों से सुभाष की ओर देखने लगता है। नेताजी स्वयं उन चिन्तातुर नेत्रों के स्नेह के अनुमान से कांप उठते हैं। पंजाबी कप्तान आगे बढ़ता है और नेड का एक टुकड़ा उठा कर वापस आता है। ]

पंजाबी कप्तान—और...और नेताजी, आप यकीन कर सकते हैं, यह हिन्दुस्तानियों के हाथों का फेंका हुआ है। कम्बख्त, नामर्द।

नेताजी—ठहरो ! अपनी क्राँम के विरुद्ध मैं इतने कठोर शब्द नहीं सुन सकता। मैं घृणा भी करता हूँ, किन्तु प्रेम के लिए, समझें। उनके सीने में भी हिन्दुस्तानी दिल धड़कता है। यही कारण है कि वे हम लोगों के रक्त के प्यासे बन गए हैं।

पंजाबी कप्तान—आपका यह प्रेम मेरी समझ में नहीं आ रहा है ?

बंगाली कप्तान—खैर, लेकिन, यह बताइए, आप निकलेंगे किस तरह ? इस घेरे से बाहर लाखों हिन्दुस्तानी आपकी अपलक प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सरकारी सेना समीप आ रही है और यदि आप पकड़ लिए गए, तो सारा

विद्रोह मर जायगा और हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता एक लम्बी अवधि तक खतरे में पड़ जायगी।

[ नेताजी क्षण भर सोचते हैं और दूसरे ही क्षण उनके मुख पर बिजली-सी चमक उठती है ]

नेताजी—ड्राइवर ! मोटर तय्यार करो। मैं सरकारी फ़ौजों को चीरता हुआ बाहर जाऊँगा।

बंगाली कप्तान—अरे ! . . . .

(सब के मुँह से एक चीख निकल पड़ती है और सब स्तम्भित हो जाते हैं)

पंजाबी कप्तान—उन कतारों को चीर कर, जहाँ ज़हरीलीं गोलियाँ तैर रही हैं, क्रदम-क्रदम पर ग्रेनेड बिछे हैं और उनको चीर कर नेताजी जाँयगे !

सब मिलकर—(एक स्वर में) नहीं, हम यह खतरा नहीं उठाने देंगे।

नेताजी—(हँस कर और फिर सहसा गंभीर होकर) खतरा ! खतरों का तो मैं आदी हो गया हूँ।

एक आवाज़—आप शत्रुओं के बीच में अकेले नहीं जा सकते। हम नहीं जाने देंगे।

नेताजी—शत्रु ! वे सब भारतीय हैं। हमारे भाई हैं। उन्हें शायद यह मालूम नहीं है कि मैं यहाँ हूँ और आप सब मेरे साथ उनकी स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं। विश्वास रखिए, मैं पहली दृष्टि में ही उनके हृदयों पर अधि-

कार कर लूँगा। भारतीय रक्त अभी इतना पतला नहीं है कि सच्चे बलिदान का मूल्य भी न आँक सके।

(नेताजी उछल कर लारी पर बैठते हैं और उनके साथ ही बंगाली कप्तान चढ़ता है और पंजाबी कप्तान चढ़नेका प्रयत्न करता है)।

नेताजी—मैं समझता हूँ कि तुम्हारा फ़ोज के साथ ही रहना ठीक है।

पंजाबी कप्तान—क्या आप चाहते हैं कि मैं आपका साथ छोड़ कर अपने खुदा को धोखा दूँ, अपने ईमान से गिर जाऊँ।

नेताजी चुप हो जाते हैं और पंजाबी कप्तान मोटर पर सवार हो जाता है, परन्तु ड्राइवर हिचकिचाता है।

ड्राइवर—नेताजी ! मुझे अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं, परन्तु आपका जीवन बहुत कीमती है, यदि कोई भी गोली . . . .।

नेताजी—गोली ! (हँसकर) अभी अँग्रेजों ने वह गोली नहीं बनाई, जो मेरे सीने को पार कर सके। समझे ! चलो, छोड़ दो फ़ुल स्पीड पर। चाहे मोटर चूर-चूर हो जाय, पर तुम ब्रेक मत लगाना, चलो।

**दृश्य-परिवर्तन**

## तृतीय-दृश्य

(अग्निवाण की तरह मोटर पलभर में शत्रुओं की क्रतारों में पहुँचती है। विरोधी सैनिक उसे घेरने बौड़ते हैं, लारी उछल कर पांच लाशों को कुचलती हुई आगे बढ़ती है ) ।

सरकारी कप्तान—देखते क्या हो, टायरों में गोली मार दो।

(दूसरे ही क्षण पिछले टायर को दो-तीन सनसनाती हुई गोलियाँ चीरती हुई निकलती है। लारी में एक भारी हचका लगता है और वह खड़-खड़ाती हुई आगे बढ़ती है। दूसरे ही क्षण लारी के शीशे पर गोलियाँ तड़कती हैं—एक गोली आगे के शीशेमें लगती है, जिसके परिणाम-स्वरूप शीशे का एक नुकीला टुकड़ा ड्राइवर के चश्मे को तोड़ता हुआ उसकी आँख में घुस जाता है। वह बेसुध होकर एक ओर लुढ़कता है। नेताजी उछल कर चक्का अपने हाथ में लेते हैं, परन्तु एकाएक दूसरी गोली शीशे के दूसरे टुकड़े को तोड़ती है। अर्द्धमूर्च्छित ड्राइवर चौंक कर उस शीशे के वार को अपने हाथों पर लेता है और उसकी हथेलियाँ लोहलुहान हो जाती हैं। नेताजी रोमांचित हो जाते हैं ] ।

नेताजी—(भरे हुए कंठ से) मेरे बहादुर बच्चे !

[ बंगाली कप्तान उत्तेजित होकर खड़ा होता है। उसके खड़े होते ही एक गोली उड़ती हुई उसकी पसलियों को तोड़ कर निकलती है। उछलता है और एक चीख सुनाई पड़ती है। लारी की भयंकर तूफानी गति के कारण उसकी लाश डगमगाती हुई चक्कर खाकर नीचे गिर पड़ती है ]

पंजाबी कप्तान—(लाल नेत्र करके) वह हिन्दुस्तानियों की गोली से मरा है। अब मैं नहीं रुकूंगा। अच्छा, अलविदा, नेताजी ! खुदा हाफिज़। (एक क्षण में लारी से नीचे कूदता है, चक्कर खा कर गिरता है और दौड़ कर साथी की लाश पर जा खड़ा होता है। रिवाल्वर फेंक कर ऊँचे हाथ करता है) ।

सरकारी कप्तान—पकड़ लो, इस जापानी चूहे को।

पंजाबी कप्तान—वह कौन हिन्दुस्तानी है, जिसने एक हिन्दुस्तानी के सीने पर गोली चलाई है ? (सब स्तम्भित-से हो जाते हैं)

एक सैनिक—(आगे बढ़ कर) ठहरो, यह जापानी अफसर नहीं है, यह तो एक हिन्दुस्तानी है।

सरकारी कप्तान—घेर लो इसे। (सैकड़ों सैनिक पंजाबी कप्तान को घेर लेते हैं और रिवाल्वर तान कर खड़े हो जाते हैं) कहाँ है वह जापानी ?

पंजाबी कप्तान—कौन जापानी ? (सक्रोध) तुम

जानते हो आज तुमने नेताजी पर गोलियाँ चलाई हैं। क्या तुम इतने कमीने हो गए हो कि चाँदी के टुकड़ों के लिए नेताजी की लाश अँग्रेजों को सौंपने के लिए तैयार हो ? क्या तुम इतने गद्दार हो गए कि देश की आज़ादी को कौड़ियों में बेचना चाहते हो ?

[ चारों ओर तने हुए रिवाल्वर झुक जाते हैं, दृष्टियाँ नीची गड़ जाती हैं और चेहरों पर शर्म छा जाती है। पठान कप्तान क्रोध से काँपता है। वह झुक कर बंगाली की लाश की पसली से बहता हुआ खून अपने हाथ में उठाता है)।

सरकारी कप्तान—तुम क्या चाहते हो ?

पंजाबी कप्तान—यह पसली, यह पसली तुम्हारी गोलियों से टूटी है, यह खून तुम्हारा बहाया हुआ है। लो, अगर चाँदी के टुकड़ों को गद्दारी से पाने के बाद भी तुम्हारी प्यास नहीं बुझी, तो खुशी से अपने देश-भाइयों के खून से तुम अपनी प्यास बुझाओ। लो, खामोश क्यों खड़े हो ? मारो, अपने वतन के लिए मर मिटने वाले शहीदों को। तानो रिवाल्वर।

[ आवेश में आकर बंगाली के खून के छींटे उन पर उछालता है। खून के छींटे लगते ही उनके मुर्दा दिलों में जोश उमड़ पड़ता है ]।

सरकारी कप्तान—हमें धोखा हुआ। हम से नेताजी

की उपस्थिति छिपाई गई थी। हमको एक जापानी अफसर से लड़ने के लिए कहा गया।

कई आवाजें—‘हम इसका बदला लेंगे।’

सरकारी कप्तान—हाँ, हम इसका बदला लेंगे।

पंजाबी कप्तान—जय हिन्द !

सब बोलते हैं—जय हिन्द !

[सरकारी कप्तान आज्ञाव हिन्द फ़ौज के कप्तान के सीने से लिपट जाता है और पास की धरती पर चार हिन्दु-स्थानी आँसू मिलते हैं। एक बार पुनः आकाश ‘जय हिन्द’ की गर्जना से गूँज उठता है ] ।

पटाक्षेप ।

\* जय-हिन्द \*

कौंसिलर



## पात्र-परिचय

### पुरुष-पात्र

- १— पं० विश्वेश्वरप्रसाद (म्युनिसिपल कौंसिलर)
- २—इन्स्पेक्टर (एक राज-कर्मचारी)
- ३—पुन्शी (एक राज-कर्मचारी)

### स्त्री-पात्र

- १—कुन्ती (एक शिशु)
- २—श्यामा (पं० विश्वेश्वरप्रसाद की धर्मपत्नी)



## कौंसिलर

[ अपने निवास-स्थान के एक छोटे से दफ्तर में एक नवयुवक म्युनिसिपल कौंसिलर, पं० विश्वेश्वर प्रसाद एक साधारण-सी कुर्सी पर बंठे हैं। उनकी टूटी-सी टेबिल के सामने तीन-चार पुराने स्टूल हैं, जिन पर दो राजकर्मचारी बंठे हैं और दो जमादार दर्वाजे पर संतरी-से खड़े हैं। पंडितजी की टेबिल पर कुछ कागजात और नक़शे खुले पड़े हैं। राजकर्मचारी नक़शों की सहायता से पण्डितजी को कुछ समझा रहे हैं ]।

मुंशी—इन्सपेक्टर साहब ! (कौंसिलर की ओर संकेत करता हुआ) आपको, धन्ना हरिजन के मकान की मरम्मत के कागज़ तो दिखा दो।

इन्सपेक्टर—अरे हाँ, यह बात तो मैं भूल ही गया था।

विश्वेश्वर प्रसाद—बात क्या है ?

इन्सपेक्टर—अरे साहब, क्या अर्ज़ करूँ ? एक मामूली-सी बात का बतंगड़ बना लिया है। यदि सच पूछो तो, आज्ञादी इन हरिजनों को मिली है।

विश्वेश्वर प्रसाद—हरिजनों की आज्ञादी आपको इतनी क्यों अखर रही है ?

इन्सपेक्टर—क्या बताऊँ सरकार, इन्होंने तो नाक में दम कर रक्खा है। (कागज़ और नक़शा हाथ में लेता हुआ) इसी मूत्रामलै को लीजिए। धन्ना भंगी के मकान का एक हिस्सा असें दराज़ से टूटा हुआ है। मलवे का ढेर लग रहा है। गधे के बच्चे को अब मरम्मत कराने की सूर्भी है। आम रास्ते को रोकना चाहता है। विष्णुदत्तजी पारीक, लाला सुखीराम और कपूरचन्द्र जैन ने तो साफ़-साफ़ लिख दिया है कि फ़ौरन् मलवा साफ़ करके आम रास्ते को चौड़ा बना दो। अब, केवल आप ही की सही होनी बाकी है।

विश्वेश्वर प्रसाद—शाबाश ! इन्सपेक्टरजी, आप चालाक तो बहुत मालूम पड़ते हैं। पर, यह उल्लू की लकड़ी किसी दूसरे पर ही घुमाने का कष्ट करो।

इन्सपेक्टर—हुज़ूर, हुज़ूर, आपने यह क्या फ़र्माया ?  
(कुछ घबरा कर)

विश्वेश्वर प्रसाद—मैं सच कहता हूँ। इन्सपेक्टरजी, आपकी दाल यहाँ नहीं गल सकती। समझे, धन्ना ने आपकी पैसे नहीं दिये, इसलिए उसका कच्चा मकान भी तुड़वाने पर उतारू हो गए हो। मैंने स्वयं मौका देखा है, तुम भूठे हो।

इन्सपेक्टर—सरकार ! मैं भूठा ही सही, पर और मेम्बरान की भी...तो...।

विश्वेश्वर—चुप रहो इन्सपेक्टरजी ! उनकी कलम

उनके हाथ में थीं और मेरी कलम मेरे हाथ में है। (पं० विश्वेश्वर इन्स्पेक्टर के हाथ में से कागज़ छीन कर कुछ लिखते हैं) जाओ, फिर कभी मुझ से ऐसा अन्याय करवाने का साहस मत करना।

इन्स्पेक्टर—(खिन्न होकर) अरे, तुम दोनों यहाँ खड़े क्या करते हो? काम पर क्यों नहीं लगते? मुंशीजी, भगती-राम के चौक में इन्हें काम बताओ? और, मैं सरकार से बात करके अभी आया।

(तीनों व्यक्ति कौंसिलर को सलाम करके प्रस्थान करते हैं)

इन्स्पेक्टर—भय्याजी, तुम मेरे दोस्त के लड़के हो, इसलिए मैं आपको अपने अनुभव की कुछ बातें बताना चाहता हूँ। यह एक मानी हुई बात है कि सात चोरों में एक साहूकार नहीं रह सकता। लाला सुखीराम और कपूरचन्द्रजी को मेम्बर बने अभी चार महीने भी नहीं हुए, पर एक के घर पर घोड़े हिनहिनाते हैं और दूसरे के दरवाजे पर मोटरें दौड़ती हैं। इधर आपका यह हाल है—वही पुरानी टेबिल और वही टूटी हुई कुर्सियाँ। जिधर देखो उधर आपके शत्रुओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है।

विश्वेश्वर—मोहम्मदअली जी ! क्या आप चाहते हैं कि मैं अपना ईमान कुछ चाँदी के टुकड़ों में बेच दूँ, जिनकी सेवा करने के लिए खड़ा हुआ हूँ, उन पर ही जुर्म कल्ले और

अपने स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा को धोखा देने लगूँ। सच्चाई और ईमान पर चलने वालों की दशा तो सदा खराब ही रहती है, पर उनका सर सदा ऊँचा रहता है। यदि परिस्थितियों को अपने अनुकूल न बना सका, तो मैं इस क्षेत्र से ही दूर हट जाऊँगा। पर, मुझे पूरा भरोसा है कि अन्तिम विजय सत्य की ही होगी। (बाहर से कोई पुकारता है) कौन है ? अन्दर आओ, भाई !

(एक काले से गन्दे कपड़े पहने हुए मोटा सेठ प्रवेश करता है और इन्स्पेक्टर के पास बँठ जाता है) ।

विश्वेश्वर—कहिए, सेठजी, क्या आज्ञा है ?

सेठ—(इन्स्पेक्टर की ओर घूर कर) क्या कहूँ, आजकल दूकानदारी करना भी पाप है। पर, जब आप जैसे बड़े आदमियों का हिसाब भी दो-दो तीन-तीन महीनों तक न हो, तब कैसे काम चले ?

विश्वेश्वर—अच्छा सेठजी ! आप कल पधारना।

सेठ—अरे साहब ! आज भी आपने तो टाल दिया। पहले सौदा देते हैं, पीछे पैसे माँगते हैं, खैरात नहीं लेते।

(बड़बड़ाता हुआ सेठ प्रस्थान करता है)

इन्स्पेक्टर—(एक कागज़ और नक्शा खोलते हुए) सेठ दूलीचन्द अपने मकान के आगे वरैन्डा और दूकान बनवाना चाहता है। सड़क काफ़ी चौड़ी है। कोई खराबी नहीं, इसलिए इजाजत दिला दी जाने में कोई हर्ज नहीं है।

विश्वेश्वर—(नक्रशे को ध्यान-पूर्वक देखते हुए)  
स्थान तो वास्तव में इजाजत देने के योग्य है। (कागज़ों  
पर कुछ लिखते हैं)

इन्सपेक्टर—भय्याजी मुआफ़ कर दें तो एक अर्ज़ करूँ।

विश्वेश्वर—कहिए न।

इन्सपेक्टर—सेठ दूलीचन्द ने मुझे ३० के तीन नाट  
बाल-बच्चों को मिठाई बाँटने का दिये थे। लाला सुखीराम  
और कपूरचन्द्र के बच्चों को तो मैं मिठाई दे आया, अब  
आपकी क्या मर्जी है ?

विश्वेश्वर—इससे पहले दूलीचन्द ने मेरे बच्चों के  
लिए कभी मिठाई नहीं भेजी। मैं क्षमा चाहता हूँ। मेरे  
बच्चों के भाग्य में रिश्वत की मिठाइयाँ कहाँ रक्खी है ?  
उन्हें तो सूखी रोटी का टुकड़ा ही खाकर जीने दो। सेठों  
की मिठाइयाँ मेरे बच्चों को कैसे पच सकती है ? हराम  
की मिठाइयाँ खाने से बच्चों के संस्कार बिगड़ जाते हैं।

इन्सपेक्टर—(कुर्ती से उठकर सलाम करता हुआ)  
पंडितजी, आप इन्सान नहीं देवता हैं, देवता। (इन्सपेक्टर  
सलाम करके कमरे से बाहर जाता है और एक छोटे शिशु  
का प्रवेश होता है।)

कुन्ती—चाचाजी ! चाचाजी !!

विश्वेश्वर—क्यों बेंटी ?

कुन्ती—ग्राम वाला आया है। उसके ठेले में बहुत

मीठे-मीठे आम हैं। सुन्दर और मोहिनी भी ले रहे हैं।

**विश्वेश्वर**—जा बेटा, अपनी माँ से पैसे लेकर तू भी ले आ। [१० विश्वेश्वर उदास होकर अपने स्थान पर बैठे रहते हैं और कुछ ही क्षणों में कुन्ती दोनों हाथों में आम फड़के हुए अपनी माँ के साथ पंडितजी के कमरे में प्रवेश करती हैं ] ।

**श्यामा**—(रुष्ट होकर) क्यों जी, इन बच्चों को आप मेरे पीछे क्यों लगा देते हो? आपने मुझे कौनसी धरोहर सम्मला रक्खी है, जिससे मैं आपका और इन बालकों का दिल खुश करती रहूँ? दिन भर तो आप मोहल्ले की सफ़ाई कराते हैं और रात भर कागज़ काले करते हैं, फिर घर में पैसा कहाँ से आयेगा? यदि कोई भूला-भटका पैसा देना चाहे, तो उसे फटकार दिया जाता है। आखिर, इस थोथी पंडिताई की अकड़ में रक्खा ही क्या है?

**विश्वेश्वर**—श्यामा, मैं अपना कर्तव्य-पालन कर रहा हूँ और भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे हैं। सच तो यह है कि सच्चे लोक-सेवकों, निस्वार्थी कार्य-कर्ताओं और होनहार लेखकों के मूल्य को अभी हमारे राष्ट्र ने नहीं पहिचाना है। पर, तुम सच कहती हो, हमें गृहस्थी भी तो चलाना है। (अपनी टेबिल के दराज़ से एक हस्तलिखित प्रति निकाल कर श्यामा को दिखाते हैं) श्यामा, क्या तुझे याद है, इस पुस्तक को मैंने कितने परिश्रम से लिखा था?

जेष्ठ का महीना, कड़कड़ाती धूप और कमरे की अंगारे-सी चार दिवारियों में बैठा हुआ, पसीनों में तर, एक युवक सब कुछ भूल कर पुस्तक लिख रहा है। उसकी धर्मपत्नी यदि पंखा झलती है तो वह मना करता है, पानी का गिलास पीने को देती है तो वह दूर रख देता है। वह किसी दूसरे ही लोक में तन्मय हो रहा है। श्यामा, यही पुस्तक है। इस पुस्तक से हजारों मनुष्यों को लाभ होगा। कोई इससे मालामाल होगा और कोई विद्वान्। मुझ को इससे कुछ चाँदी के टुकड़े ही मिलेंगे, जिनसे कठिनता से एक महीने का काम चल सकेगा, यदि तुम कुछ दिन और गृहस्थी का काम चला सको तो, हम को . . . भी . . . नहीं, नहीं, हम नहीं चला सकते। मैं अभी जाता हूँ। (हस्तलिखित प्रति को लेकर 'डितजी द्वार की ओर बढ़ते हैं)।

श्यामा—सुनो भी, आप तो व्यर्थ जोश में आ गए। ऐसी कोई बात नहीं है। क्या इस पुस्तक को भी कोड़ियों में दे दोगे ?

विश्वेश्वर—(द्वार पर से घूम कर) यह बात तुम प्रलोभनवश कह रही हो। पर, श्यामा ! पुरुष का कदम बढ़ने के बाद पीछे नहीं हटता।

(पं० विश्वेश्वर शीघ्रता से बाहर जाते हैं)

पटाक्षेप



**कृष्ण-वियोगिनी**



## पात्र-परिचय

### स्त्री-पात्र

- |            |                          |
|------------|--------------------------|
| १. नन्दिनी | ( राधा की एक सखी )       |
| २. विशाखा  | (           "          ) |
| ३. ललिता   | (           "          ) |
| ४. राधा    | ( कृष्ण-वियोगिनी )       |

### पुरुष-पात्र

- |          |                      |
|----------|----------------------|
| १. उद्धव | ( श्रीकृष्ण के सखा ) |
|----------|----------------------|



## कृष्ण-वियोगिनी

[स्थान—यमुना-तट की एक सघन निकुंज। कुछ गोपिधाँ कदम्ब की तोतरपंखी छाया में बैठी हुई बातें कर रही हैं। काली, पोली, श्याम, धूम्र, श्वेत आदि रंगों की स्वस्थ एवं सुन्दर धेनुएँ तथा उनके बछड़े जंगल में आस-पास उन्मने-से होकर चर रहे हैं।]

नन्दिनी—न जाने, श्यामा और गोवर्द्धन को भी क्या हो गया है? मन-मार कर चरते हैं। कपिला और धूम्रावती के नेत्रों के कभी आंसू ही नहीं सूखते। सरयू और गगा तो सदा उदास ही रहती हैं। गणेश और नन्दी कालिन्दी की ओर कसक भरी चितवन से देखा ही करते हैं। कृष्ण-वियोग से ब्रज का सारा गौधन ठगा-सा, लुटा-सा और विरही-सा बन गया है।

विशाखा—देखती नहीं, निकुंजों में नव पल्लव विकसित होते हैं, कोंपलें अपना घूंघट खोलती हैं, पुष्प-वाटिका के सुमन खिलते हैं, पर इनका वह आकर्षण, इनकी वह कोमलता और इनकी वह मादकतापूर्ण सुगन्ध न जाने आज कहाँ चली गई? मयूर नाचते हैं, भ्रमर गूँजते हैं, पिक गाती है, पर, इनके नृत्य के साथ अश्रुओं की वर्षा होती है,

इनके गुंजार में कर्कशता आ गई है और कोयल की कूहक हृदय-भेदी बन कर रुदन की-सी ध्वनि करती है।

ललिता—कृष्ण मथुरा क्या गये, सच पूछो तो ब्रज-मण्डल के प्राण सूखते ही जा रहे हैं। न जाने वह अब क्यों और किसके लिए जीवित है? (गहरी निश्वास के साथ) दीपक की पतली-सी ली के समान टिमटिमाती हुई एक आशा थी, वह भी अब बुझना चाहती है। कोई कहते हैं कि भीषण वियोग के प्रभाव से राधा के मस्तिष्क में विकार हो गया है, कोई उसे दीवानी बताते हैं, जिसने लोक-लाज खो कर ब्रजमण्डल में अपना घर बना लिया है। कोई कहते हैं कि उसने सेवा-मार्ग अपना लिया है। राधा कहती है कि 'वह कृष्ण है, उसे कृष्ण के नाम से ही पुकारा करो।' वृषभानुदुलारी अब इस संसार में नहीं है, उसे भूल जाओ, सर्वत्र केवल कृष्ण ही कृष्ण है। राधा ने तो अपना अस्तित्व मिटा कर कृष्णमय बना लिया, पर, हाय ! हम क्या करें ? न अपने को मिटा सकी और न जीवित ही समझतीं, केवल सिसकना और तड़फना रह गया है।

(मोर-मुकुट धारण किये हुए और बांसुरी बजाते हुए बादलों के समान उमड़ते हुए गोधन के पीछे-पीछे राधा आ रही हैं)—

नन्दिनी—वह देखो, पगली आ गई। सारे गो-धन को ब्रज की ओर बढ़ाये लिए जा रही है। अभी दो पहर दिन शेष है, इसे यह क्या सूझा है ?

**विशाला**—सच पूछो तो राधा भीषण वियोगाग्नि से संतप्त होकर भी कर्तव्य-भ्रष्टा नहीं बनी है। वह मन-मोहन की दिन-चर्या को अपने जीवन में पूर्ण रूप से उतारने में दत्तचित्त है। खेद तो इस बात का है कि हम अकर्मण्य बन कर राधा की समस्याओं को और भी उलझा रही हैं। यदि राधा भी हमारी तरह हाथ पर हाथ धर कर निराश होकर बैठ जाती, तो ब्रज की आज क्या दशा होती ?

**ललिता**—राधा के समान क्या हम सब कृष्ण को भूलने का प्रयास नहीं करती ? पर, मन नहीं मानता कि राधा श्याम सुन्दर हैं। उसके कहने से मोरमुकुट धारण करती हैं, वंशी शृष्क अधरों पर लगाती है, गौधन को हाँकने के लिए हाथ में लठिया उठाती हैं, पर हृदय आगे नहीं बढ़ता, हज़ार बार समझाने पर भी मन नहीं मानता। अरे, गणेश, नन्दी, कपिलादि कहाँ भगे जा रहे हैं ?

(एक धीमी-सी सुमधुर अवाज़ आती है और उसके बाद तीनों सखियों के सम्मुख गौधन के साथ राधा प्रकट होती है)

**राधा**—अरी गोपियो, यहाँ बैठी-बैठी क्यों ऊँच रही हो ? देखती नहीं, उत्तर दिशा में बिजली की चमक के साथ एक बदली उमड़ चली है—बड़े वेग से वर्षा आने वाली है। ब्रज का सारा गौधन जंगल में बिखर चुका है—पशुओं की रक्षा करना है। ललिता, तुम तीनों गौधन

को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं शेष बिखरे हुए पशुओं को जंगल से ढूँढ़ कर लाती हूँ।

विशाखा—किन्तु राधा...?

राधा—तुम्हारी राधा तो कभी की मर चुकी, तुम उसे भूलती क्यों नहीं ? जब ब्रजवालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूल कर लोक-सेवा में जुट जाँयगी, तब ब्रज के उत्साहहीन ग्वालबाल और किसानों के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयों में स्फूर्ति आ जायगी—वे अपने हल और बैलों को सम्भाल लेंगे—ब्रज पुनः हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा। ब्रजवासियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि, ब्रजमण्डल किसी की धरोहर है और हमारे जीवित रहते उसे क्षति कौन पहुँचा सकता है ? जिसकी यह धरोहर है, उसको सम्भला कर चाहे तुम... (कंठ रँध जाते हैं और अभ्यु-राशियाँ बहने लगती हैं) चाहे तुम मानो या न मानो ब्रज की सुरक्षा के लिए मेरी तरह समस्त ब्रजवासियों को कृष्ण बनना ही होगा।

(वृक्षों को झुरमुट से—नैपथ्य से सहसा आवाज आती है—'धन्य ब्रजवासियो ! अब नहीं रुका जाता' सहसा एक कृष्ण-सदृश्य दिव्य व्यक्तित्व गोपियों के सम्मुख आता है और अभ्यु धाराएँ बहाता हुआ राधा के चरणों में लौटने लगता है और फिर हाथ जोड़ कर पुनः सम्मुख खड़ा होता है ) ।

**राधा**—साधु तुम कोन हो ? तुम्हारी वेश-भूषा और रंग-ढंग तो चिर-परिचित-सा है।

**उद्धव**—देवी ! मैं मथुरा से आया हूँ—मेरा नाम उद्धव है। महाराज श्री कृष्णचन्द्र का निजी सखा होने के नाते मैं आप लोगों की सेवा में भेजा गया हूँ। मुझे अपने पाण्डित्य पर बहुत घमण्ड था और मैं ज्ञानबल से आप लोगों पर विजय-प्राप्त करने की धृष्ट कल्पना करता था। आपके अभूतपूर्व कृष्णवियोग और लोक-सेवा के सुदृढ रचनात्मक कार्य को देख कर स्वयं को पूर्णतया आज पराजित समझता हूँ। मेरे ज्ञान और पाण्डित्य का दम्भ ब्रज के रजकणों में घुलकर भक्तिमय हो गया है। ब्रजबालाओं, आपको धन्य है ? आप तो कृष्ण से भी बढ़कर हैं।

**ललिता**—चतुर नागरिक, क्या आपके संग हमारे चित्तचोर नहीं आए ? वे कब आएँगे ? क्या उन्होंने ब्रज-बालाओं के लिए और विशेषकर राधिका के लिए कोई सन्देश भेजा है ?

**नन्दिनी**—भाई उद्धव, यह तो बताओ, क्या हमारे मदन गोपाल मथुरा में भी गऊ चराते हैं, क्या कभी-कभी मक्खन-चोरी भी करते हैं ? सुना है कि गोपीनाथ आजकल मथुरा में कुब्जादासी के साथ रास-क्रीड़ा करते हैं ?

**विशाखा**—क्या वासुदेव और माता देवकी हमारे बाल-गोपाल को नन्द-यशोदा की तरह माखन और रोटी

को नगर की ओर सुरक्षित स्थान पर ले चलो और मैं शेष बिखरे हुए पशुओं को जंगल से ढूँढ़ कर लाती हूँ।

विशाखा—किन्तु राधा...?

राधा—तुम्हारी राधा तो कभी की मर चुकी, तुम उसे भूलती क्यों नहीं ? जब ब्रजवालाएँ मेरे साथ सब कुछ भूल कर लोक-सेवा में जुट जाँयगी, तब ब्रज के उत्साहहीन ग्वालबाल और किसानों के कृष्ण-वियोग से बुझे हुए हृदयों में स्फूर्ति आ जायगी—वे अपने हल और बैलों को सम्भाल लेंगे—ब्रज पुनः हरा-भरा होकर लहलहाने लगेगा। ब्रजवासियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि, ब्रजमण्डल किसी की धरोहर है और हमारे जीवित रहते उसे क्षति कौन पहुँचा सकता है ? जिसकी यह धरोहर है, उसको सम्भला कर चाहे तुम... (कंठ रँध जाते हैं और अश्रु-राशियाँ बहने लगती हैं) चाहे तुम मानो या न मानो ब्रज की सुरक्षा के लिए मेरी तरह समस्त ब्रजवासियों को कृष्ण बनना ही होगा।

(वृक्षों को झुरमुट से—नैपथ्य से सहसा आवाज आती है—'धन्य ब्रजवासियो ! अब नहीं रुका जाता' सहसा एक कृष्ण-सदृश्य दिव्य व्यक्तित्व गोपियों के सम्मुख आता है और अश्रु धाराएँ बहाता हुआ राधा के चरणों में लौटने लगता है और फिर हाथ जोड़ कर पुनः सम्मुख खड़ा होता है ) ।

राधा—साधु तुम कोन हो ? तुम्हारी वेश-भूषा और रंग-ढंग तो चिर-परिचित-सा है।

उद्धव—देवी ! मैं मथुरा से आया हूँ—मेरा नाम उद्धव है। महाराज श्री कृष्णचन्द्र का निजी सखा होने के नाते मैं आप लोगों की सेवा में भेजा गया हूँ। मुझे अपने पाण्डित्य पर बहुत घमण्ड था और मैं ज्ञानबल से आप लोगों पर विजय-प्राप्त करने की धृष्ट कल्पना करता था। आपके अभूतपूर्व कृष्णवियोग और लोक-सेवा के सुदृढ रचनात्मक कार्य को देख कर स्वयं को पूर्णतया आज पराजित समझता हूँ। मेरे ज्ञान और पाण्डित्य का दम्भ ब्रज के रजकणों में घुलकर भक्तिमय हो गया है। ब्रजबालाओं, आपको धन्य है ? आप तो कृष्ण से भी बढ़कर हैं।

ललिता—चतुर नागरिक, क्या आपके संग हमारे चित्तचोर नहीं आए ? वे कब आएँगे ? क्या उन्होंने ब्रज-बालाओं के लिए और विशेषकर राधिका के लिए कोई सन्देश भेजा है ?

नन्दिनी—भाई उद्धव, यह तो बताओ, क्या हमारे मदन गोपाल मथुरा में भी गऊ चराते हैं, क्या कभी-कभी मखन-चोरी भी करते हैं ? सुना है कि गोपीनाथ आजकल मथुरा में कुब्जादासी के साथ रास-क्रीड़ा करते हैं ?

विशाखा—क्या वासुदेव और माता देवकी हमारे बाल-गोपाल को नन्द-यशोदा की तरह माखन और रोटी

का कलेवा अब भी देते है ? माता यशोदा ने घनश्याम का कलेवा एकत्रित कर रक्खा है—वे कहती हैं कि मोहन आवेगा तो उसे उसका सारा कलेवा सौंप दूंगी। अरे, महात्मा उद्धव, रोते क्यों हो ? तड़पते हुए ब्रज का केवल छाया चित्र देख कर ही कांप उठे ! बताओ, कृष्ण ने क्या कहा है ?

उद्धव—(उद्धव के हिचकियाँ बँध जाती हैं और एक पत्रिका वे कठिनता से राधा को सौंपते हैं और राधा उसे हृदय से लगा लेती हैं और उद्धव का कंठ हँथ कर भरा जाता है) कृष्ण . . . नहीं . . . आ . . . सकते ।

राधा (प्रमादिनी-सी होकर) तुम कपटी हो। कौन कहता है कृष्ण यहाँ नहीं है ? मैं ही कृष्ण हूँ—मुझे सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई पड़ते है। देखते नहीं, मेरा मोरमुकुट, यह बाँसुरी ? यह बाँसुरी किसकी है ? (बाँसुरी बजाने की चेष्टा करती हैं और मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं, उद्धव और सखियाँ राधा को सम्भालती हैं) ।

पटाक्षेप

बालि-वध



## पात्र-परिचय

### पुरुष-पात्र

१. श्रीराम (अयोध्या के बनवासी राजकुमार)
२. श्री लक्ष्मण (श्री राम के छोटे भाई)
३. ब्रह्मचारी (श्री हनुमान)
४. सुग्रीव (किष्किन्धा के राजा के छोटे भाई)
५. बालि (किष्किन्धा के राजा)



# कालि-वध

## प्रथम दृश्य

[ स्थान—ऋष्यमूक पर्वत । पथरीली घाटियों में राम और लक्ष्मण भटक रहे हैं । सहसा उस भयावह एवं निर्जन वन में एक ब्राह्मण ब्राह्मचारी उनसे मिलता है । ]

ब्राह्मचारी—महाशय ! आप कौन हैं ? वेषभूषा से तो आप राजकुमार से दृष्टिगोचर हो रहे हैं । आपकी लम्बी-लम्बी उलभी हुई जटाएँ और तपस्वियों की-सी पोशाक मन में सन्देह उत्पन्न करती हैं । एक ओर तो ऋष्यमूक पर्वत की ये पथरीली कठोर घाटियाँ, भयंकर आँधी और दुःसह धूप और दूसरी ओर आपके मनमोहक सुन्दर कोमल अंग—ये सब क्यों हैं ?

राम—ब्राह्मणकुमार ! हम राम-लक्ष्मण दोनों भाई हैं और कोसलराज महाराज दशरथ के पुत्र हैं । पिता ने हमें १४ वर्ष का वनवास दिया है । हमारे साथ एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री और थीं । यहाँ राक्षसों ने मेरी धर्मपत्नी को हर लिया है । इन भयंकर वनों में हम उसे ही खोजते फिरते हैं । (राम के कण्ठ रुँध जाते हैं और नेत्रों से आँसू

के सम्मुख राम, लक्ष्मण और हनुमान बैठे हुए विचार कर रहे हैं । ]

सुग्रीव—(नेत्रों में जल भर कर) कोसलकुमार ! आप निश्चिन्त रहें—मिथिलेश कुमारी जानकी जी अवश्य मिल जाँयगी । मैं एक बार यहाँ मंत्रियों के साथ बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था, तब मैंने राक्षसों के वश में पड़ी बहुत विलाप करती हुई सीताजी को आकाश-मार्ग से जाते देखा था । हमें देखकर उन्होंने 'राम ! राम !! हे राम !!!' पुकार कर वस्त्र गिरा दिया । हनुमान, वह दिव्य वस्त्र आपको क्यों नहीं दिखाते ? (हनुमान लपक कर वस्त्र लेने जाते हैं)

राम—वानरराज ! मुझे यह तो बताओ, आप इस भयंकर पर्वत पर क्यों रहते हैं ?

सुग्रीव—(एक दीर्घ निःश्वास खींचकर) राजकुमार ! यह एक अत्यधिक जटिल कथा है । सच तो यह है कि कभी-कभी मनुष्य भ्रम के चक्कर में पड़कर अपने विवेक को खो बैठता है । बालि और सुग्रीव दोनों भाई भी भ्रम के ही शिकार हैं । यह मनोवैज्ञानिक रहस्य है ।

राम—आप सच कहते हैं वानरराज ! मनुष्य मायावश होकर सब कुछ भूल जाता है । हाँ, फिर . . . .

सुग्रीव—बालि और मैं दो सहोदर भाई हैं । बालि और सुग्रीव का परस्पर का प्रेम एक आदर्श था । सहसा

एक बार मायावी दानव हमारी राजधानी किष्किन्धा में आया और अर्द्धरात्रि को नगर के प्रवेशद्वार पर आक्रमण कर दिया। बालि जैसा महान् योद्धा इस मायावी-आक्रमण को कब सहन कर सकता था ? उसने शत्रु का उसी क्षण पीछा किया और मायावी को वहाँ से भागते ही बन पड़ा। मैं भी भाई की सहायतार्थ उसके पीछे-पीछे चला। वह धूर्त मायावी दानव एक भयानक पर्वत की गुफा में जा घुसा। बालि एक क्षण रुका और मुझे देखकर आश्चर्य से पूछा, “अरे सुग्रीव ! तुम भी यहाँ . . . । ठीक है। देखो, मायावी को जीवित छोड़ना किष्किन्धा के लिए अच्छा नहीं है। तुम एक पक्ष तक मेरी यहाँ प्रतीक्षा करो। यदि इस अवधि में मैं लौटकर न आऊँ, तो समझ लेना बालि . . . । अरे, रो पड़े सुग्रीव ! देखना किष्किन्धा का राज्य-सिंहासन सूना न रहे—अंगद तुम्हारे हाथ में है।” यह कह कर महा वीर बालि एक क्षण में गुफा में प्रवेश कर गए। मित्र, मैंने वहाँ एक मास तक बालि की प्रतीक्षा की, पर बालि नहीं आये। गुफा में से रक्त की बड़ी-भारी धारा निकली। मैं डर गया। मैंने समझा कि मायावी ने भाई को मार डाला, अब आकर मुझे मारेगा। किष्किन्धा का क्या होगा ? बालि के आदेश का क्या होगा ? मैं मायावी से लड़ना चाहता था, पर बालि के ये शब्द मेरे कानों में जोर-जोर से गूँज रहे

थे—“बालक अंगद तुम्हारे हाथ में है, किष्किन्धा का राज्य-सिंहासन सूना न रहे।” अतः मैंने गुफा के प्रवेशद्वार पर एक विशाल शिलाखण्ड उठा कर लगा दिया और वहाँ से भाग आया। पर, बालि नहीं मरा था, बालि ने मायावी को मारा था। वह रक्त की धार मायावी के रक्त की धार थी। मुझे भ्रम हो गया था, क्योंकि बालि ने एक पक्ष की अवधि दी थी।

जब बालि किष्किन्धा लौट कर आया, तो मुझे राज्य-सिंहासनारूढ़ देखा। उसके भी चित्त में भ्रम उत्पन्न हो गया और उसने समझा कि सुग्रीव ने राज्य के लोभ से ही गुफा के द्वार पर शिलाखण्ड रक्खा था। उसने मुझे शत्रु के समान बहुत अधिक मारा और मेरा सर्वस्व तथा मेरी स्त्री को भी छीन लिया। हे मित्र ! अब मैं बालि के डर से इस ऋष्यमूक पर्वत पर एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा हूँ। बालि के भय से मैं अब भी त्रस्त हूँ, पर शापवश होकर वह यहाँ नहीं आ सकता।

राम—सुग्रीव ! इस कथा में तुम्हारा दोष तो अणु-मात्र भी नहीं, बालि जैसे वीर को तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए था। (भुजाएँ फड़का कर) सुनो, मैं एक ही बाण से बालि को मार गिराऊँगा और त्रिभुवन में उसकी रक्षा करने वाला कोई भी न होगा। जो लोग मित्र के दुख से दुखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप

लगता है। अपने पर्वत के समान दुखों को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु पर्वत के समान समझना चाहिए।

**सुग्रीव**—तपस्वीराज ! बालि मेरा भाई है। इस राष्ट्र को बालि जैसे शूरवीरों की आवश्यकता है। अब मेरी हार्दिक इच्छा है कि सब कुछ छोड़ कर मैं भगवान् का भजन करूँ और सीताजी की खोज में अपने शेष जीवन को खपा दूँ।

**राम**—वानरराज ! आपके मुख से मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? बालि का भाई सुग्रीव इतना कायर नहीं हो सकता, फिर रघुवंशियों के वचन मिथ्या नहीं हुआ करते। क्या आपको मेरे धनुष-बाण पर भरोसा नहीं ? उठो, आज ही बालि को ललकारना होगा।

[शस्त्रों से सुसज्जित होकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव बालि से लड़ने के लिए प्रस्थान करते हैं ]।

यवनिका-पतन

## तृतीय दृश्य

[ स्थान—किष्किन्धा। एक रणांगण में बालि और सुग्रीव द्वंद्व युद्ध में संलग्न हैं। सुग्रीव की हार पर हार हो

रही है। अन्त में बाली एक घातक घूँसे का सुग्रीव पर प्रहार करता है। सुग्रीव एक भयंकर चीत्कार के साथ व्याकुल होकर भागता है और वृक्षों की आड़ में खड़े हुए श्री राम की शरण में जाता है ]

राम—सुग्रीव, हताश होने की आवश्यकता नहीं। सबसे बड़ी समस्या यह है कि बालि और सुग्रीव का एक-सा रूप है। इसी भ्रम से मैं बालि को न मार सका। अब केवल एक उपाय है—मैंने आपके लिए पुष्पों का हार बनाया है। (पुष्पों का हार सुग्रीव के गले में डालते हैं) मित्र ! अब आप अभय हैं—इस बार हमारी विजय निश्चित है। आपको पुनः बालि को ललकारना होगा। शीघ्रता करो, विलम्ब व्यर्थ है।

[ सुग्रीव रणांगण में पुनः बालि को ललकारता है और बालि जयघोष करता हुआ फिर सुग्रीव पर टूट पड़ता है। दोनों में परस्पर घोर संग्राम होता है। राम एक विशाल वृक्ष की आड़ से यह संघर्ष देखते हैं। जब भय मान कर सुग्रीव हृदय से हार जाता है, तब राम तान कर बालि के हृदय में बाण मारते हैं। बाण के लगते ही बालि व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है, पर, जब, बालि राम को बाण लिये, धनुष चढ़ाये हुए और लाल नेत्र किये हुए देखता है, तो हुंकार करके पुनः उठने की चेष्टा करता है, किन्तु लड़खड़ा कर पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ता है ]

**बालि**—क्या आप एक क्षत्रीय हैं? सच्चे क्षत्रीय तो सदा धर्म की रक्षा करते हैं। युवक ! आपने एक अधर्म-युद्ध किया है। एक व्याध की तरह छिप कर आपने मुझे क्यों मारा? मैं आपका वैरी और सुग्रीव प्यारा? आपके समान तेजस्वी युवक के लिए यह एक लज्जा की बात है। क्या आज से संसार में धर्मयुद्ध नहीं रहा? क्या क्षत्रीय भी अधर्म में रत हो गये हैं?

**राम**—महाबाहु बालि ! मैंने आपको धोखे से मारा है। क्षत्रीय कभी अधर्म-युद्ध में संलग्न नहीं होते। सुनो, छोटे भाई की स्त्री, बहिन, पुत्र की स्त्री और कन्या ये चारों समान हैं। इनको जो कोई बुरी दृष्टि से देखता है, उसे मारने में सच्चे क्षत्रियों को कुछ भी पाप नहीं होता।

**बालि**—सुग्रीव एक विश्वासघाती भाई है।

**राम**—यह आपका भ्रम है। अपने जीवन की अन्तिम घड़ी में इस भ्रम को दूर कर दो।

**बालि**—यह कैसे?

**राम**—अवधि समाप्त होने पर मायावी दानव की गुफा में आपको मरा जानकर ही सुग्रीव ने गुफा के प्रवेश-द्वार पर एक विशाल शिलाखण्ड रक्खा था।

**बालि**—तो क्या मुझे धोखा हुआ?

**राम**—हाँ, बालि और सुग्रीव दोनों ही भ्रान्त हो गए।

बालि—(बाण के घाव की वेदना से तड़प कर)  
आह ! आह !! पर अब क्या हो सकता है ?

राम—महावीर ! आपके जैसा बाँका योद्धा इस पृथ्वी पर कभी नहीं हुआ, किन्तु मैं विवश था। (बालि के सर पर हाथ रखकर रुदन करते हैं) मुझे कभी इसका प्रायश्चित्त करना होगा।

(रोते हुए तारा और अंगद का प्रवेश)

बालि—युवक ! क्या बालि का वध बालि की हार है ?

राम—कदापि नहीं. किष्किन्धा नरेश !

बालि—(अपने पुत्र की ओर संकेत करके) यह....  
अंगद....मेरा पुत्र है, इसे स्वीकार कीजिए । आह !  
सुग्रीव....क्ष....मा....राम ! राम !! राम !!!

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं ।

मारेहु मोहिं व्याध की नाई ॥

मैं बैरी सुग्रीव पिआरा ।

अवगुन कवन नाथ मोहि मारा ॥

(बालि के प्राण-पक्षी उड़ जाते हैं)

पटाक्षेप

कौटिल्य



## पात्र-परिचय

### पुरुष-पात्र

- |                 |                  |
|-----------------|------------------|
| १—विष्णुगुप्त   | (चाणक्य)         |
| २—क्षणक         | (चाणक्य के पिता) |
| ३—शकटार         | (मंत्री)         |
| ४—राक्षस        | ( „ )            |
| ५—मगधेश्वर नन्द | ( „ )            |
| ६—कात्यायन      |                  |

### स्त्री-पात्र

- |            |                             |
|------------|-----------------------------|
| १—सुभाषिनी | (मंत्री-कन्या और अभिनेत्री) |
|------------|-----------------------------|



# कौटिल्य

## प्रथम दृश्य

[स्थान—महात्मा चणक का आश्रम। आश्रम के उपवन में विष्णुगुप्त और सुभाषिनी बात-चीत करते हुए दिखाई पड़ते हैं]।

विष्णुगुप्त—बात-बात पर रुष्ट होना क्या तुम्हारा स्वभाव बन गया है, सुभाषिनी ? बस ! इतनी-सी बात पर ही यह उदासी। अरे ! रो पड़ी। देखती नहीं, मेरा तीर खाली गया है। उस दृक्ष में होकर तुम्हारा तीर आरपार निकल गया।

सुभाषिनी—(हँसकर) वात्स्यायन ! तुम बड़े नट-खट हो; कभी रुष्ट ही नहीं होने देते। सच बताओ, लक्ष्य-भेद किसने किया ?

विष्णुगुप्त—(गंभीर होकर) सुभाषिनी ने.....।

सुभाषिनी—तुम झूठे हो, वात्स्यायन ! रंग में श्याम होने के साथ ही क्या तुम मन के भी काले हो ?

विष्णुगुप्त—यदि सुभाषिनी का हृदय काला है, तो

वात्स्यायन का इसमें क्या दोष ? सुभाषिनी की हार विष्णु की ही हार है . . . . . ।

सुभाषिनी—(बात काटकर) परन्तु, विष्णु अजय है । क्या सुभाषिनी के सम्बन्ध में भी ऐसा नहीं कहा जा सकता ?

विष्णुगुप्त—(दीर्घ निश्वास के साथ) जब तक वात्स्यायनके हृदय पर सुभाषिनी का राज्य रहेगा, तब तक संभव है ऐसा ही हो ।

सुभाषिनी—क्या इसमें भी कोई शंका है, हठी ब्राह्मण ?

विष्णुगुप्त—शंकावाली बात का तो भविष्य ही निर्णय करेगा, भोली बालिके ! उसके लिए अभी से चिन्तित क्यों ?

[आश्रम की ओर से सहसा किसी के उच्च स्वर से पुकारने का घोष होता है—‘अरे द्रुमिल ! ओ विष्णु ! . . . ।’ आवाज को सुनकर विष्णु आश्रम की ओर दौड़ता है और उसके पीछे दौड़ती हैं कोमलांगी सुभाषिनी । आश्रम की कुटिया के द्वार पर एक शिलाखण्डपर बंठे हुए महात्मा चणक भाषण करते हुए दिखाई पड़ते हैं] ।

चणक—यह महापद्म का जारज पुत्र नन्द, महापद्म का हत्याकारी नन्द, मगध में राक्षसी राज्य कर रहा है । अहिंसा की आड़ में नित्य क्रूर कर्म होते हैं । मंत्री शकटार का अपमान एक असाधारण घटना है । बौद्ध धर्मावलम्बी नन्द के विरुद्ध कुछ करना ही होगा । नागरिकों ! सावधान !

उपस्थित श्रोता—महात्मा चणक के इंगित पर हम सब मर मिटेंगे ।

मन्त्री शकटार—क्या ये सब मेरे ही कारण होने जा रहा है ? मैं कल ही त्यागपत्र दे दूँगा । जिसके अन्न से मैं पला हूँ, क्या उसी राजसत्ता के विरुद्ध मुझे विद्रोह करना होगा ।

चणक—मित्र ! यह व्यक्ति विशेष का प्रश्न नहीं है । इस समस्या के साथ जन साधारण का भाग्य जुड़ा है । सच्चा ब्राह्मण अन्याय को कैसे सहन करेगा ? मन्त्री शकटार के उदासीन रहने पर भी चणक नन्द के क्रूर कर्मों को भस्म करने के लिए दावानल बन जायगा ।

शकटार—ठीक है भाई ! पर मुझे अबोध नन्द पर अब भी दया . . . . . ।

[शकटार का वाक्य पूर्ण होने से पूर्व ही एक आश्रमवासी आकर मस्तक नवा कर सूचना देता है] ।

आश्रमवासी—गुरुदेव ! आश्रम से तक्ष-शिला जानेवाले सब छात्र प्रस्तुत हैं ।

[महात्मा चणक विद्यार्थियोंके स्वागतार्थ आगे बढ़ते हैं और सब विद्यार्थी हाथ-जोड़ कर गुरु के सम्मुख खड़े दिखाई पड़ते हैं] ।

चणक—मेरे प्राणों से प्यारे विद्यार्थियों ! आप सब मगध के भावी भाग्य विधाता बनने तक्ष-शिला जा रहे हैं । आप मगध की आशा हैं, मगध के स्वाभिमान हैं और सर्वस्व

हैं। देखना, मगध के आश्रम की लाज तुम्हारे हाथ है। (अपने पुत्र विष्णुगुप्त के विशाल स्कन्धों पर हाथ रखकर भराए हुए कण्ठ से) विष्णु ! बेटा !! यदि मगध के योग्य सच्चे ब्राह्मण न बन सको, तो मुझे और मगध को जीवित लौटकर अपना मुख न दिखाना। जाओ, भगवान् आपका कल्याण करें।

[सब शिष्य प्रस्थान करते हैं—केवल सुभाषिनी रह जाती है।]

सुभाषिनी—गुरुदेव ! (रोते हुए) मुझे भी तक्षशिला जाने की आज्ञा दीजिये। क्या तक्षशिला में अपने आश्रम के समान बालिकाओं का शिक्षण नहीं होता ?

चणक—यह बात नहीं है बेटा ! मुख्य-मुख्य शस्त्रों का अभ्यास किये बिना और आश्रम की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए बिना मैं तुम्हें तक्ष-शिला नहीं भेज सकता। अभी तुम्हें यहाँ ही अध्ययन करना होगा।

शकटार—(अपनी पुत्रीके आँसू पोंछते हुए) हाँ बेटा ! महात्मा चणक की आज्ञा शिरोधार्य है, चलो।

[तीनों का प्रस्थान और पर्दा गिरता है]

## द्वितीय दृश्य

[सरस्वती के उपवन में महाराज नन्द कुसुमोत्सव मना रहे हैं। मन्दिर और उपवन के पथ में सुभाषिनी और महाराज नन्द के प्रधान मंत्री राक्षस बातें करते हुए दृष्टि-गोचर होते हैं]।

राक्षस—सुभाषिनी ! हठ न करो ।

सुभाषिनी—नही मंत्री ! उस ब्राह्मण को दण्ड दिये बिना सुभाषिनी जीवित नहीं रह सकती। मैं बौद्ध-स्तूप की पूजा करके लोट रही थी, उस कठोर, घमण्डी ब्राह्मण ने व्यंग्य किया। राक्षस ! उसने कहा—‘बौद्ध नर्तकियों के लिए भी एक धर्म की आवश्यकता थी। चलो, अच्छा ही हुआ। ऐसे धर्मावलम्बियों की भी कमी नहीं है।’

राक्षस—यह उसका अन्याय था।

सुभाषिनी—पर, अन्याय का प्रतिकार भी तो है। किसी को किसी पर लांछन लगाने का क्या अधिकार है ?

राक्षस—मुझे समझने में क्या आप भूल कर रही हैं ? मैं एक निश्चित सीमा तक ही बौद्धमत का अनुयायी हूँ। बौद्धमत की छत्रछाया में रहकर एक दुराचारी भी सदाचारी बन सकता है।

सुभाषिनी—नहीं, भावी राज-चक्र में भी आपको बौद्धमतावलम्बियों का ही समर्थन करना पड़ेगा। बोलो, क्या तय्यार हो ?

राक्षस—में प्रस्तुत हूँ ।

सुभाषिणी—जीवो, राक्षस !

[सहसा महाराज नन्द का प्रवेश]

नन्द—आज महामन्त्री सुभाषिणी से घुल-घुलकर क्या बातें कर रहे हैं ?

राक्षस—सुभाषिणी से बौद्ध-धर्म की दीक्षा सुन रहा हूँ ।

सुभाषिणी—महाराज ! आज आप इतने उद्विग्न क्यों हैं ?

नन्द—सुन्दरी ! कहीं भी चैन नहीं मिलता । क्या कहूँ, किससे कहूँ ? सेनापति मौर्य का पुत्र चन्द्रगुप्त ही विद्रोहियों का नेता बना है । यह सब उस भयंकर ब्राह्मण का षडयंत्र है ।

सुभाषिणी—ब्राह्मण प्रायः षडयंत्रकारी ही होते हैं, अब यह कौन-सा ब्राह्मण आ गया महाराज ?

राक्षस—यह सब जानकर तुम क्या करोगी, सुभाषिणी ?

सुभाषिणी—क्या इसमें भी कोई रहस्य है ? अच्छा राक्षस ! जाती हूँ । आज्ञा हो महाराज ! सरस्वती के मन्दिर में महारानी के सम्मुख अभिनय करना है ।

[मस्तक झुका कर सुभाषिणी प्रस्थान करती है और पर्दा गिरता है । पुनः मगध के एक निर्जन साँय-साँय करते हुए पथ में सुभाषिणी की एक भयंकर मनुष्य से भेंट होती है] ।

विष्णुगुप्त—इस निर्जन पथ में अर्द्ध रात्रि के समय जानेवाली तुम कौन हो, देवी ?

सुभाषिनी—एक महिला का इस प्रकार मार्ग रोककर खड़े होने वाले तुम कौन हो, भयकर पुरुष ?

विष्णुगुप्त—तुम्हारा क्या नाम है ?

सुभाषिनी—इससे प्रयोजन ? तुम कौन हो ?

विष्णुगुप्त—मैं चन्द्रगुप्त का गुरु विष्णुगुप्त हूँ, मुझे लोग चाणक्य भी कहने लगे हैं। यहाँ आओ, सुभाषिनी !

सुभाषिनी—वात्स्यायन !

विष्णुगुप्त—हाँ ! सुभाषिनी !

सुभाषिनी—तुम कब आये ?

विष्णुगुप्त—क्रान्ति के साथ . . . . . ।

सुभाषिनी—समझ गई। पिताजी और गुरुदेव कहाँ हैं ?

विष्णुगुप्त—अन्धकूप में कारावास की यातना भोग रहे हैं। गुरुदेव निर्वासित हैं। उनका गोधन छीना जा चुका है। हमारे आश्रम पर बौद्ध बिहार बन गया है। हाँ, पर, इन सब बातों से तुम्हें क्या ? नन्द की रंगशाला की प्रधान अभिनेत्री जो बन गई। सुना है कि सुभाषिनी कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बिनी भी है।

सुभाषिनी—इसमें कौन-सा आश्चर्य है ? मनुष्य तो परिस्थितियों के हाथ की कठपुतली है।

विष्णुगुप्त—चाणक्य ! परिस्थितियों को तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बनाना खूब जानता है। जाओ सुभाषिनी ! अब तुम्हारा कोई मार्ग नहीं रोकेगा।

सुभाषिनी—दीपक जलाकर कहाँ चले जा रहे हो, वात्स्यायन ।

विष्णुगुप्त—चाणक्य को अंधकार भी पसन्द है ।

[विष्णुगुप्त अंधकार में अदृश्य होते हैं और सुभाषिनी अवाक और स्तम्भित रह जाती हैं] ।

## तृतीय दृश्य

[सिन्धु नदी के तट पर घास की एक पर्णकुटी में संगमरमर की एक शिला पर, एक तपस्वी के वेष में भारतवर्ष के महान् क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ चाणक्य बंठे-बंठे मगध के वयोवृद्ध अमात्य कात्यायन से बातें कर रहे हैं] ।

विष्णुगुप्त—वररुचि ! यदि तुम मेरा रहस्य खोल दोगे, तो बना बनाया काम बिगड़ जायगा, मगध-साम्राज्य पुनः संकट में पड़ गया है । चन्द्रगुप्त मगध का सम्राट बनकर कुछ घमण्डी-सा बन गया है, उसकी आँखें भी तो खोलनी हैं । जब तक सिल्यूकस का सैन्यबल भारतवर्ष में है, तब तक देश में पूर्ण शान्ति स्थापित नहीं हो सकती ।

कात्यायन—ब्राह्मण हो भाई, दया के सागर हो, तुम्हीं मान जाओ । मैं वृद्ध हूँ, मुझसे अब राज-काज नहीं चलता । चाहता हूँ कि इसी सिन्धु के तटपर कुछ दिन रहकर अपना वार्तिक पूरा कर लूँ ।

**विष्णुगुप्त**—असंभव, चाणक्य पुनः मन्त्रित्व-ग्रहणः नहीं कर सकता । यवन-सेना भारत के वक्षस्थल पर शूल की तरह खड़ी है । तुम्हें शीघ्र मगध की यात्रा करनी होगी ।

**कात्यायन**—आजकल राक्षस सिल्यूकस का एक वेतन-भोगी सेवक बन गया है । यह सब उसी का कुचक्र है ।

**विष्णुगुप्त**—तुम निश्चिन्त रहो, केवल मगधका आन्तरिक शासन सम्भाल लो, इधर मैं सब ठीक करूँगा । हाँ ! यदि सुभाषिनी को भेजते तो कार्य में आशातीत सफलता मिलती । समझे !

**कात्यायन**—विष्णु ! गृहस्थ-जीवन कितना सुन्दर है ?

**विष्णुगुप्त**—अब हम-तुम साथ ही विवाह करेंगे !

**कात्यायन**—नहीं विष्णु ! मेरी गृहणी तो घर पर है और फिर यह वृद्धावस्था . . . . . ।

**विष्णुगुप्त**—कात्यायन ! तुम वास्तव में एक सहृदय ब्राह्मण हो । करुणा और सौहार्द का एक साथ उद्रेक ऐसे ही उदार हृदयों में होता है । प्रकृति ! शक्ति ! देख, तुम्हें ब्राह्मण के दो स्वरूप बताऊँ । एक ओर करुणा का करुणालय उमड़ रहा है, क्षमा और सहानुभूति की नदियाँ उमड़ रही हैं, हर्ष, हँसी और आशा के स्रोत कल-कल नाद से नाच रहे हैं । दूसरी ओर मेरा पाषाण-हृदय हिमालय-सा बनकर कठोर से कठोर दण्ड देने में भी नहीं हिचकिचाता, मुझे केवल सफलता चाहिए । मुझे अपने हाथों खड़े किये हुए एक महान

साम्राज्य को फलता-फूलता देखना है। हा ! हा !! . . . . .  
हा ! [टहका मार कर भयंकर हँसी हँसते हैं] ।

कात्यायन—शान्त, तुम हँसो मत कौटिल्य, तुम्हारी हँसी तुम्हारे क्रूर दण्ड से भी अधिक भयंकर है। वह देखो ! कौन आ रही है ? सावधान ! इस सुकमार और निरापराध कली को भी निष्ठुरता से कहीं न कुचल देना। जाता हूँ ब्राह्मण ! इस वृद्धावस्था में भी मगध का प्रधान मंत्री बनना ही पड़ेगा।

(कात्यायन का प्रस्थान। ब्राह्मण चाणक्य अपनी बिल्वरी हुई जटा को बाँध कर एक रमणी का स्वागत करने के लिए सिन्धु-तट की ओर बढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। आगन्तुक महिला कौटिल्य को प्रणाम करती हुई दिखाई पड़ती है।)

विष्णुगुप्त—(बालू के एक टीले पर बैठते हुए)  
सुभाषिनी ! तुम यहाँ कैसे ?

सुभाषिनी—आपकी अनुपस्थिति में सम्राट ने . . . . । पिताजी ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है और कहा है कि शीघ्र मगध नहीं लौट चले तो बना बनाया काम बिगड़ सकता है।

विष्णुगुप्त—मे मगध क्यों चलूँ ? मगध में मेरे लिए अब क्या रक्खा है। यह महान् साम्राज्य महाराज चन्द्रगुप्त का है, महात्मा कात्यायन और महामंत्री शकटार के हाथ में शासन की बागडोर है, फिर चिन्ता किस बात की ? याद है ! तक्षशिला के लिए विदा करते समय पिताजी ने कहा था—

‘यदि मगध के योग्य सच्चे ब्राह्मण न बन सको तो मुझे और मगध को अपना मुँह न दिखाना ।’ जब तक यवन सेना भारत की पवित्र भूमि पर मण्डराती रहेगी, तब तक कौटिल्य को चैन कैसे आ सकता है ? तू ही बता सुभाषिनी, मैं मगध कौनसा मुख लेकर लौटूँ ? हाँ ! केवल बचपन की एक धुंधली-सी स्मृति कभी-कभी हृदयाकाश में तारावली के सदृश्य टिमटिमाने लगती है, परन्तु अब तो वह भी . . . . . ।

**सुभाषिनी**—नीलाम्बर की छत के नीचे स्वनिर्मित साम्राज्य में स्वच्छन्द विचरनेवाले निर्भीक ब्राह्मण के मुख से आज मैं ये कैसी बातें सुन रही हूँ ?

**विष्णुगुप्त**—ये सब कुछ तुम्हें सुनना ही होगा, सुभाषिनी ! कौटिल्य को क्या कभी दया आती है ? भारतवर्ष की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तुम्हें एक और भयंकर अभिनय करना होगा । देश की सुरक्षा के लिए जब कौटिल्य सब कुछ बलिदान कर सकता है, तो सुभाषिनी ही पीछे क्यों रहे ?

**सुभाषिनी**—वात्स्यायन ! स्वदेश के लिए सर्वस्व तक बलिदान किया जा सकता है, पर अभिनय करती-करती अब मैं थक गई हूँ ।

**विष्णुगुप्त**—कौटिल्य अत्यधिक क्रूर है, सुभाषिनी ! वह कब मानेगा । जानती हो, यवनों के वेतन भोगी, एक राष्ट्रद्रोही राक्षस से प्रणय का अभिनय तुम्हें पुनः करना होगा । मेरे लिए नहीं, देश की सुरक्षा के लिए . . . . . ।

सुभाषिनी—कूर, निर्दयी, पाषाण-हृदयी ! न जाने तुम किस धातु के बने हो ? हाथ मेरा भाग्य !

(सिसकियाँ भर कर रोती है)

विष्णुगुप्त—सुभाषिनी, तुम्हारा कृष्ण क्रन्दन मेरे कठोर निर्णय को नहीं बदल सकता। मैं तुम्हें दण्ड दूंगा। कौटिल्य के हृदय में क्षमा के लिए कोई स्थान नहीं है। हाँ ! तुमसे बढ़कर इस संसार में मेरा हितैषी इतर कौन हो सकता है ? सुभाषिनी और राक्षस के हाथ में चद्रगुप्त के महान् साम्राज्य की बागडोर सौंपकर विष्णुगुप्त हिमालय के अंचल में तपस्या करेगा।

सुभाषिनी—महापुरुष ! मुझे क्षमा करो। मैं सब समझ गई। सहस्रवार प्रणाम ! (भ्रुककर दण्डवत करती है) भाई, मुझे आशीर्वाद दो। मैं अभी चली।

(अपने आँसुओं को साड़ी से छेते हुए सुभाषिनी का प्रस्थान।)

विष्णुगुप्त—(स्वतः) स्त्री मेरी साधना के मार्ग में एक अर्गला है, जिसे मैं कई वर्षों पूर्व ही तोड़ चुका। एक धुंधली-सी रेखा बचपन की याद को लेकर खिचा करती थी, उसको भी मैंने आज मिटा दिया। हा ! हा !! . . . . हा !

(टहका मार कर जोर-जोर से पागलों की तरह भयंकर हँसी हँस कर गर्जना करते हैं।)

(पटाक्षेप)

काङ्गुड



# पात्र-परिचय

## पुरुष-पात्र

१. सक्सेना (काले रंग का इकहरे शरीर का आदमी)
२. गोयल (एक गौरा और मोटा आदमी)
३. भार्गव (आधुनिक ढंग का व्यक्ति)
४. सम्पादक (एक पंडित जी)



# ताड़-गुड़

( एक सरस कथोपकथन )

[समय—रात्रि का प्रथम चरण। स्थान—एक ड्राइंग रूम। कमरे के बीच एक गोल मेज है—मेज के चारों ओर कुर्सियों पर कुछ मित्र बैठे हुए बातें कर रहे हैं।]

सक्सेना—आज तो मारे ठंड के कपकपी छूट रही है, क्यों मि० गोयल ?

गोयल—मुझे आश्चर्य है, मि० सक्सेना ?

सक्सेना—क्यों, क्या तुम्हें ठंड नहीं लगती ?

गोयल—सारा शरीर काँप रहा है। पर, ताज्जुब तो यह है कि सम्पादकजी का आधा डिब्बा सिगरेट का खाली करने पर भी तुम्हें ठंड सता रही है।

(सब हँसते हैं)

सम्पादक—(सिगरेट के डिब्बे की ओर देखते हुए) नहीं कोई हर्ज नहीं, आप तो और पीओ सक्सेना बाबू ? गोयल, तुम बड़े मुँहफट हो जी ! देखते नहीं, सक्सेना भेंप गये।

**सक्सेना**—यह सम्पादकजी के व्यंग हमको प्रभावित नहीं कर सकते। यदि अपना भला चाहते हो तो, चाय जल्दी से पिला दो, वरना चार-चार सिगरेट एक साथ जलाऊंगा और पण्डितजी रात भर पलंग पर पड़े पड़े तारे गिनते रहेंगे।

**भार्गव**—यह बात हुई है पते की, मैं भी यही कहने वाला था।

**सक्सेना**—लेकिन आप कहते कैसे, खुदा ने आपको हिम्मत ही नहीं दी।

(सब हँसते हैं)

**सम्पादक**—मैं भी भार्गव के मुँह से यही सुनना चाहता था। चाय तो पहले ही तैयार है। (ज़ोर से आवाज़ देकर) अरे रामचरण, अरे ओ रामचरण ! ज़रा चाय जल्दी ले आओ, भार्गव साहब मारे ठंड के सिकुड़े जा रहे हैं।

(पुनः सब हँसते हैं)

(नौकर चाय के प्याले लाकर मेज़ पर रखता है)

**सम्पादक**—रामचरण ! भार्गव साहब चाय नहीं पीते, इन्हें दूध देना।

**रामचरण**—जो हुक्म !

(इसके बाद चारों स्वाद लेकर पीना शुरू करते हैं)।

**सम्पादक**—बोलो गोयल ! चाय कैसी बनी ?

**गोयल**—पंडितजी, चाय क्या बनी है ? कमाल है !

सक्सेना—भाई, वाकई कमाल है ? क्या मैं भी कुछ कहूँ ? सब—(एक स्वर से) कहिये, कहिये ।

सक्सेना—इसमें तो एक अजीब सुगन्ध भी है, जिससे मेरा तो जी भरा जा रहा है । पंडितजी, एक कप और देना पड़ेगा ।

सम्पादक—अरे भाई, एक क्या, आप दो पीजिये । भार्गव साहब, आपको दूध कैसा लगा ?

भार्गव—पंडितजी, दूध पीने का मज़ा ही ज़िन्दगी में आज आया है ।

सक्सेना—यह कैसे ?

भार्गव—दूध का यह सुनहरा रंग, यह महक और यह स्वाद . . . . बस, कुछ न पूछिए । पर, पंडितजी, यह तो बताइए आज यह क्या जादू है ?

सक्सेना—(भार्गव को चिढ़ाते हुए) मियाँ, अण्डे का पाउडर है, अण्डे का . . . . ।

भार्गव—चोर को तो साहूकार भी चोर ही दिखाई पड़ता है । यह तुम्हारे घर का दूध होता तो मैं विश्वास कर लेता ।

सम्पादक—जी नहीं, आप लोग यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि इस चाय और दूध में 'ताड़-गुड़' का मीठा है ।

भार्गव—(चिन्तित होकर) पंडितजी ! ताड़ से तो ताड़ी बनती है । आज आपने यह क्या किया ?

**सम्पादक**—घबराइए नहीं भार्गव साहब ! आपका धर्म भ्रष्ट नहीं होगा, मैं भी तो एक ब्राह्मण हूँ ? क्या आप जी, अंगूर, अनार, सन्तरा आदि पदार्थ नहीं खाते ?

**गोयल**—इन्हें तो सभी प्रयोग में लाते हैं।

**सक्सेना**—परन्तु, इनके रस से मदिरा भी बनती है।

**भार्गव**—यह एक दूसरी बात है, एक अलग प्रयोग है।

**सम्पादक**—यही बात ताड़ी पर भी है। खजूर, ताड़, नारियल, सैगौ आदि वृक्षों को आदमी छेद कर रस निकालते हैं ? इस रस को 'नीरा' कहते हैं। ताड़-गुड़ बनाने वाले इसी ताजे नीरे को उबाल कर गुड़ बना लेते हैं। नीरे का शहद जैसा गुड़ बनता है। गन्ने के गुड़ से यह गुड़ अच्छा होता है। गन्ने का गुड़ सिर्फ मीठा होता है, ताड़-गुड़ स्वादिष्ट होता है। इसकी महक और स्वाद मन लुभाने वाले होते हैं। हमारे देश में ताड़-गुड़ करोड़ों रुपयों का बन सकता है।

**गोयल**—यह तुम क्या कहते चले जा रहे हो, पंडितजी ?

**सम्पादक**—भाई मैं सच कहता हूँ। राजस्थान में भी लाखों रुपयों का ताड़-गुड़ बन सकता है। इस समय राजस्थान में अनुमानतः २० लाख खजूर के वृक्ष हैं। ये वृक्ष गुड़ और चीनी के भण्डार हैं।

**सक्सेना**—अच्छा तो पंडितजी, यह रस कैसे निकालते हैं ?

**सम्पादक**—रस्सी की सहायता से खजूर के वृक्षों पर

छेदक चढ़ते हैं और वृक्षों में छेद कर घड़ों में नीरा इकट्ठा कर लेते हैं। नीरे के घड़ों में पहले थोड़ा-सा चूना डाला जाता है। चूना एक रक्षक द्रव्य है। अतः वह नीरा को खट्टा होने से रोकता है और उसमें उफान नहीं आने देता। इसके बाद नीरा को कड़ाही में डाल कर गरम किया जाता है और फिर उससे गुड़ बना लेते हैं।

**भार्गव**—तो क्या वह चूना शरीर के लिए हानिकारक नहीं है ?

**सम्पादक**—चूने का प्रभाव नीरा में सुपरफास्फेट डाल कर मिटा दिया जाता है और चूना वैसे भी शरीर के लिए हानिप्रद नहीं है।

**भार्गव**—परन्तु, इसी रस से ताड़ी भी तो बनती है।

**सम्पादक**—ताड़-गुड़ और ताड़ी की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं। जौ से रोटी भी बनती है और मदिरा भी। रोटी को हम सब आदर से ग्रहण करते हैं और मदिरा त्याज्य है, घृणित है। इसी तरह ताज्जी नीरा से गुड़, चीनी, मिश्री, आदि बनाई जाती हैं, पर खट्टी होने पर वह ताड़ी बन जाती है। अच्छे दूध से बीसों मिठाइयाँ बन सकती हैं, पर फटे दूध से कुछ नहीं बन सकता।

**सबसेना**—हूँ ! मैंने भी कल एक समाचार-पत्र में ताड़-गुड़ के विषय में ऐसी ही बातें पढ़ी थीं। हाँ, सम्पादकजी,

**सम्पादक**—घबराइए नहीं भार्गव साहब ! आपका धर्म भ्रष्ट नहीं होगा, मैं भी तो एक ब्राह्मण हूँ ? क्या आप जी, अंगूर, अनार, सन्तरा आदि पदार्थ नहीं खाते ?

**गोयल**—इन्हें तो सभी प्रयोग में लाते हैं।

**सक्सेना**—परन्तु, इनके रस से मदिरा भी बनती है।

**भार्गव**—यह एक दूसरी बात है, एक अलग प्रयोग है।

**सम्पादक**—यही बात ताड़ी पर भी है। खजूर, ताड़, नारियल, सैगौ आदि वृक्षों को आदमी छेद कर रस निकालते हैं ? इस रस को 'नीरा' कहते हैं। ताड़-गुड़ बनाने वाले इसी ताजे नीरे को उबाल कर गुड़ बना लेते हैं। नीरे का शहद जैसा गुड़ बनता है। गन्ने के गुड़ से यह गुड़ अच्छा होता है। गन्ने का गुड़ सिर्फ़ मीठा होता है, ताड़-गुड़ स्वादिष्ट होता है। इसकी महक और स्वाद मन लुभाने वाले होते हैं। हमारे देश में ताड़-गुड़ करोड़ों रुपयों का बन सकता है।

**गोयल**—यह तुम क्या कहते चले जा रहे हो, पंडितजी ?

**सम्पादक**—भाई मैं सच कहता हूँ। राजस्थान में भी लाखों रुपयों का ताड़-गुड़ बन सकता है। इस समय राजस्थान में अनुमानतः २० लाख खजूर के वृक्ष हैं। ये वृक्ष गुड़ और चीनी के भण्डार हैं।

**सक्सेना**—अच्छा तो पंडितजी, यह रस कैसे निकालते हैं ?

**सम्पादक**—रस्सी की सहायता से खजूर के वृक्षों पर

छेदक चढ़ते हैं और वृक्षों में छेद कर घड़ों में नीरा इकट्ठा कर लेते हैं। नीरे के घड़ों में पहले थोड़ा-सा चूना डाला जाता है। चूना एक रक्षक द्रव्य है। अतः वह नीरा को खट्टा होने से रोकता है और उसमें उफान नहीं आने देता। इसके बाद नीरा को कड़ाही में डाल कर गरम किया जाता है और फिर उससे गुड़ बना लेते हैं।

**भार्गव**—तो क्या वह चूना शरीर के लिए हानिकारक नहीं है ?

**सम्पादक**—चूने का प्रभाव नीरा में सुपरफास्फेट डाल कर मिटा दिया जाता है और चूना वैसे भी शरीर के लिए हानिप्रद नहीं है।

**भार्गव**—परन्तु, इसी रस से ताड़ी भी तो बनती है।

**सम्पादक**—ताड़-गुड़ और ताड़ी की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं। जौ से रोटी भी बनती है और मदिरा भी। रोटी को हम सब आदर से ग्रहण करते हैं और मदिरा त्याज्य है, घृणित है। इसी तरह ताज्जी नीरा से गुड़, चीनी, मिश्री, आदि बनाई जाती हैं, पर खट्टी होने पर वह ताड़ी बन जाती है। अच्छे दूध से बीसों मिठाइयाँ बन सकती हैं, पर फटे दूध से कुछ नहीं बन सकता।

**सक्सेना**—हूँ ! मैंने भी कल एक समाचार-पत्र में ताड़-गुड़ के विषय में ऐसी ही बातें पढ़ी थीं। हाँ, सम्पादकजी,

क्या हमारी सरकार भी सामूहिक ढंग से ताड़-गुड़ बनाने की कोई योजना रखती है ?

**सम्पादक**—हाँ, यह कार्य राजस्थान में तो १२ महीने से चल रहा है। पर, ताड़-गुड़ एक ऐसा ग्रामोद्योग है, जिसको व्यक्तिगत ढंग से ही चलाना अच्छा है। सरकार का इरादा ताड़-गुड़ का व्यापार करने का नहीं है और न वह इस उद्योग को किन्हीं पूंजीपतियों के हाथों में सौंपना चाहती है। सरकार का उद्देश्य ताड़-गुड़ की पद्धति का प्रचार करने से है कि जिससे प्रत्येक ग्रामीण स्वावलम्बी बन जाय और राष्ट्र की उपज में वृद्धि हो।

**गोयल**—इसका मतलब तो यह है कि सरकार देहातियों में इस पद्धति का प्रचार कर मैदान से दूर हटना चाहती है।

**सम्पादक**—हाँ, तुम किसी हद तक ठीक कह रहे हो। जब राजस्थान का प्रत्येक ग्रामीण एवं नागरिक इस पद्धति से परिचित हो जायगा, तो यह उद्योग स्वतः ही चल पड़ेगा; क्योंकि प्रत्येक इन्सान स्वावलम्बी होना चाहता है।

**भार्गव**—क्या ताड़-गुड़ उद्योग से गन्ने की काश्त पर भी कोई प्रभाव पड़ेगा ?

**सम्पादक**—ताड़-गुड़ उद्योग 'अधिक अन्न उपजाओ' आन्दोलन का सहायक है। गन्ने की काश्त पर ताड़-गुड़ उद्योग का सीधा प्रभाव यह पड़ेगा कि किसान खेतों में गन्ना बोने के बजाय अन्न उत्पन्न करेंगे। क्योंकि आजकल हज़ारों

एकड़ उपजाऊ ज़मीन गन्ने की काश्त ही घेर लेती है। ज्यों-ज्यों ताड़-गुड़ उद्योग बढ़ेगा, त्यों-त्यों गन्ने की काश्त घटेगी और ज़्यादा अन्न उत्पन्न होगा। इतना ही नहीं गन्ने को उगाने में, सींचने में, काटने में, पेलने में और रक्षा करने में बीसों भ्रंशट करने पड़ते हैं। वह तो किसान के खून का पानी बना देता है। पर खजूर के पेड़ लाखों की संख्या में खड़े हैं। इनका रस लेने में कुछ भी भ्रंशट नहीं करना पड़ता।

**सबसेना**—हाँ, यह तो आपने ठीक कहा। पर, क्या यह उद्योग राजस्थान में चल सकेगा ?

**सम्पादक**—क्यों नहीं, जब मद्रास और बंगाल में लाखों रुपयों का गुड़ बनता है, तब राजस्थान में ही ऐसी क्या बात है ? राजस्थान में लाखों खजूर के वृक्ष बेकार पड़े हैं। ये खजूर के वृक्ष राजस्थान की मरुभूमि में अमृत देंगे। किसी योजना की सफलता अच्छे कार्यकर्ताओं, कर्मठ प्रचारकों और जनता की सद्भावनाओं पर निर्भर रहती है। सरकार का कर्तव्य इस योजना को कार्यरूप में परिणत कर लोगों में शौक पैदा करने का है।

**भार्गव**—क्यों पंडितजी, ताड़-गुड़ से मिठाइयाँ भी बन सकती हैं ? मैंने कभी ताड़-गुड़ नहीं देखा। क्या आप दिखला सकते हैं।

(सम्पादक मेज़ की वराज से तीन कागज़ की पुड़ियाँ निकाल कर तीनों मित्रों के हाथ में सौंपते हैं और तीनों मित्र

पुड़िया में से ताड़-गुड़ निकाल कर अपनी जिह्वा पर रखते हैं)

**भार्गव**—गुड़ क्या है, यह तो बनी बनाई मिठाई है।

**सक्सेना**—मीठा होने के साथ ही साथ कुछ कसायला भी है।

**गोयल**—इस उद्योग को अवश्य प्रोत्साहन मिलना चाहिए। कसायले पन को दूर हटाने के प्रयत्न भी होने चाहिए।

**सम्पादक**—इस गुड़ से आप हलवा, गजक, रेवड़ी, तिलसकरी, गुलगुले आदि सब तरह की मिठाइयाँ बना सकते हैं। इससे बढ़िया किस्म की चीनी व मिश्री भी बनाई जाती है।

**सक्सेना**—तो, क्या सम्पादकजी आप हमें इसकी चीनी व मिश्री के भी दर्शन करायेंगे ?

(सम्पादक दोनों के नमूने देते हैं।)

**सक्सेना**—ग़ज़ब है भाई लोगो, ग़ज़ब, पंडितजी ने तो आज हमें एक अनोखी दुनिया में ला खड़ा किया है। अच्छा तो अगले रविवार को भार्गव साहब भाभी साहब के हाथ से ताड़-गुड़ की मिठाइयाँ बना कर मित्रमंडली का मनोरंजन करें। यही आज का प्रस्ताव है।

**गोयल**—मैं इसका समर्थन करता हूँ।

**सम्पादक**—क्यों भार्गव ? अब तो यह प्रस्ताव पास हो रहा है।

**भार्गव**—लेकिन, मेरे पास ताड़-गुड़ कहाँ है ?

**सम्पादक**—इसकी चिन्ता मत करो, राजस्थान के ताड़-गुड़ संघटक मेरे मित्र हैं. केवल ५) की मंजूरी दे दो।

**भार्गव**—अच्छा तो यही सही। इस गुड़ की पूरी आजमाइश होगी और मनोरंजन भी।

**सक्सेना**—इसका जनाब को धन्यवाद। पर अब चलो, (घड़ी की ओर देख कर) आज का दरबार बरखास्त किया, सवा दस हो गए। सम्पादक जी ! जय हिन्द !

(चारों का प्रस्थान।)

पटाक्षेप



**साथी**



# पात्र-परिचय

## पुरुष-पात्र

१. जेलर
२. साथी

## स्त्री-पात्र

१. क़ैदी (एक स्त्री)



## सार्थी

[स्थान—जेल की चारदीवारी में कैदियों के रहने की बैरक । समय—अर्द्धरात्रि । जेलर जेल का निरीक्षण करते हुए एक बैरक में प्रवेश करता है । बैरक में रहनेवाली एक बन्दिनी ठंड से कांपती हुई सहसा खड़ी हो जाती है] ।

जेलर—क्यों, क्या ठंड लग रही है ?

क़ैदी—ठंड भी कैदियों को ही अधिक सताती है ।

जेलर—इस बैरक पर सूरज की एक भी किरण नहीं पड़ती । क्यों न आपका तबादला बैरक नं० १५ में कर दिया जाय ? शायद, आपको तो इसमें कोई ऐतराज नहीं होगा ?

क़ैदी—आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद । पर, मैं इस बैरक को नहीं छोड़ना चाहती ।

जेलर—मैं आपका तबादला 'ए' क्लास के कैदियों के रहने वाले कमरे में कर रहा हूँ ।

क़ैदी—साहब, यदि आप मुझे सुखी देखना चाहते हैं तो, कृपया मेरा तबादला यहाँ से न करें । यहाँ की दीवारों से मैं घुल-मिल गई हूँ, यह जेल की 'सी' क्लास की बैरक भी मेरे लिए स्वर्गतुल्य बन गई है ।

जेलर—मुझे आश्चर्य है ! मैं नहीं जानता था कि

आपको इस बैरक से इतना मोह हो गया है। खैर, जैसी आपकी इच्छा . . . .। यदि मेरे हाथ में ही सब कुछ होता तो, आपको जेल की इस चारदीवारी से मुक्त करा कर इसी क्षण अपने गर्मागर्म कमरे में ले चलता। अच्छा, फिर कल मिलेंगे।

[जेलर मुस्कराहट के साथ कैदी पर कटाक्ष करता हुआ बाहर जाता है और क्रौंड़ी गंभीर मुद्रा से नीची दृष्टि कर लेती है। जमादार पुनः बैरक के ताला बन्द कर प्रस्थान करता है। क्रौंड़ी चटाई पर टाट बिछाकर अपने कम्बल को दुबले-पतले शरीर से लपेटकर ंड से काँपती हुई बंठ जाती है और कुछ समय तक घुटनों में अपना सर रखकर चुप-चाप बंठी रहती है। फिर सहसा अपनी बैरक की दीवार से सटो हुई दूसरी बैरक के उजालदान को ओर मुँह घुमाकर किसी को पुकारती है। उजालदान इतना ऊँचा है कि वे एक-दूसरे को नहीं देख सकते]।

क्रौंड़ी—साथी, साथी ! साथी !! आज बोलते क्यों नहीं ? साथी ! अभी से सो गए। हाड़-कम्पा देने वाली ठंड है, हवा तीर की तरह हड्डियों में चुभ रही है। पाँव ओले की तरह गल रहे हैं। भगवान् जानें, तुम्हें नीद कैसे आती है ?

साथी—(बड़ भरी कराहट के साथ) आह ! दिन भर चक्की पीसने वाले हाथों के छाले फोड़े बन गए हैं।

उफ़, गज़ब की टीस चल रही है, इन हाथों में। जी चाहता है इन अँगुलियों को काट कर फेंक दूँ। रीढ़ की हड्डी तड़क-तड़क कर चूर-चूर होना चाहती है। आँख लगना तो दूर रहा, इस बर्फ़-सी चटाई पर लेटा तक नहीं जाता।

क़ौदी—फिर डाक्टर ने क्या लिखा ?

साथी—तीन दिन की छुट्टी की सिफ़ारिश की है। हाँ, आज आपने जेलर की बात क्यों नहीं मानी ?

क़ौदी—अपने दिल से पूछो।

साथी—(हँसकर) शायद, जेलर एक भला आदमी है ?

क़ौदी—(भुंभला कर) जेलर का नाम मत लो। साथी ! मुझे उसके नाम से ही घृणा होती है। अच्छा साथी, यह तो बताओ, तुम काले हो या गौरे और तुम्हारी नाक कैसी है ?

साथी—(खिलखिलाकर हँसता हुआ) बिलकुल काला-बबर्चीखाने के तवे जैसा और नाक चूहे के बिल जैसी, आधी कटी हुई। पर, यह तो बताओ, आप मोटी हैं या पतली ?

क़ौदी—बिलकुल काली, भद्दी, मोटी, जैसे भैंस। पर, इन बातों से तो मैं डर गई, साथी—मेरा हृदय कांप उठा है। हाड़-कम्पा देने वाली ठंड, धाँय-धाँय करने वाली अर्द्धरात्रि, जेल की बैरक, काला, आधी नाक कटा हुआ एक भयंकर पुरुष और काली, भद्दी, भैंस जैसी स्त्री !

यह कौनसा नर्क दिखा रहे हो, साथी ? तुम्हें डर नहीं लगता, कितने कठोर हो ? निर्दयी !

साथी—अरे, आप डर गईं। अच्छा तो सुनो, कश्मीरी स्त्रियों का सौंदर्य केसर की क्यारियों की तरह महकता है, वे मृगनयनी और गजगामिनी होती हैं।

क़ौदी—राजस्थानी भी तो बाँके जवान होते हैं, गौरे और सुडौल।

साथी—क्या यह चित्र पसन्द आ गया ?

क़ौदी—कवि कविता पढ़ रहा है, सुरम्य उद्यान में केसर महक रही है। भला, इस दृश्य को कौन पसन्द नहीं करेगा। काश, मैं इस बैरक की दीवार को तोड़ सकती, तो इस साथी के छालों पर केसर का लेप अवश्य करती ?

साथी—खूब ! पर केसर की क्यारी, यह तो बताओ आप इस जंजाल में कैसे आ फँसी ?

क़ौदी—दुर्भाग्य से, एक प्रेमी के जीवन को बचाने के अपराध में। डरना नहीं साथी, मैं एक खून के अपराध में जेल काट रही हूँ। पर कल्पना के सुनहले स्वप्नों में रमने वाले कविराज, आप इस जेल के सीखचों में तड़फने कैसे आ टपके ?

साथी—भूल से समझ बैठा था कि आज्ञादी मिल गई। विचार-स्वतंत्रता और सत्य की बेड़ियाँ काट कर शरीरों की आवाज़ बुलन्द करने लगा। हड़तालें हुई, मिल ठप्प

थीं, रेलों के चक्के जाम हो गए और जनता की बुलन्द आवाज से आकाश फटने लगा। अवसरवादी सफ़ेदपोश घबरा उठे, उनकी कुर्सियाँ उलटने लगीं और मोटे पेट का पानी सूख गया। बस, फिर क्या था, अंग्रेजों का-सा दमन-चक्र चला, विचार-स्वतंत्रता का गला घोट दिया गया और सत्य के हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल दी गईं। डरना नहीं क़ैदी, आज मैं एक भयंकर राजद्रोही हूँ। हाँ, पर आपने आज तक यह नहीं बताया कि आपका नाम और ग्राम क्या है? आप शहरी हैं या देहाती?

**क़ैदी**—यह सब कुछ पूछ कर आप क्या करेंगे? दो दिन का रैन-बसेरा है। कभी हम भी स्वच्छन्द पक्षी की तरह खुले आकाश में फिर से उड़ने लगेंगे। बहुत दूर—एक दूसरे से बहुत दूर।

**साथी**—क़ैदी, क्षमा करना, मैं कुछ और ही समझ बैठा था।

[सहसा साथी की बंरक का ताला खुलता है और जेलर मय जमादार और सन्तरी के बंरक में प्रवेश करता है। उनके साथ एक तेज लालटेन है। साथी अचंभा करके मूर्ति-सा खड़ा रहता है और चकित होकर जेलर की ओर देखता है।]

**जेलर**—क्यों हज़रत, क्या जेल में भी प्लॉट और षड़यंत्र चल रहे हैं? आप इस खूनी स्त्री के साथ जेल तोड़ना चाहते हैं? जानते हो, ऐसे षड़यंत्रों की यहाँ क्या

इनाम मिलती है? दो दर्जन भीगी हुई बेंट ! वह भी आधी रात में। आइए, तशरीफ़ लाइए। जमादार, इस राजद्रोही को नं० ५ की बैरक में बन्द कर दो।

(पास की कोठरी से एक बर्बभरी पुकार उठती है)

क्रौंढी—जेलर, तुम साथी को कहाँ ले जा रहे हो? भगवान् के नाम पर साथी को यहाँ से न ले जाओ, जेलर!

जेलर—चुप रहो रमा, यह खाला का घर नहीं है। जानती हो, इसका नाम जेल है, जेल।

साथी—रमा, दो दिन का रैन-बसेरा है... विदा... चलो जमादार, किधर ले चलते हो? (जमादार के साथ उबास साथी प्रस्थान करता है, उधड़ू पास की बैरक से एक चीख के साथ भयंकर आर्तनाद और धमाका सुनाई पड़ता है। जेलर क्रौंढी की बैरक में प्रवेशकर स्तम्भित रह जाता है। क्रौंढी बेहोश पड़ी है और उसके सर से खून बह रहा है)।

जेलर—ओह, रमा, मुझे क्या मालूम कि बात यहाँ तक बढ़ चुकी है? सन्तरी, भगो, डाक्टर को तुरंत लाओ (उबास जेलर क्रौंढी के सर को अपनी गोद में रखकर अपने हाथों से खून रोकते हैं)।

पटाक्षेप

**हृदय-परिवर्तन**



# पात्र-परिचय

## पुरुष-पात्र

१. स्थानिक
२. आचार्य
३. महाभिक्षु
४. अशोक
५. (सब)



# हृदय-परिवर्तन

## प्रथम दृश्य

(स्थान—बौद्ध मठ) ।

स्थानिक—मठवासियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, महाभिक्षु !

आचार्य—यह तो बड़े हर्ष की बात है। जितनी संख्या बढ़ेगी उतना ही मानवता की सेवा करने का हमें पुण्य अवसर प्राप्त होगा।

स्थानिक—किन्तु . . . (रक जाता है)

आचार्य—हाँ, किन्तु क्या ? ठहर क्यों गये स्थानिक। निरापद भिक्षु को भावी आशंकाओं से क्षुब्ध नहीं होना चाहिये।

स्थानिक—कॉलिंग के परास्त नरेश के साथ आज प्रायः २,००० व्यक्तियों का मठ में प्रवेश हुआ है। उन्हें भोजन कहाँ से दिया जावे ?

आचार्य—क्यों ? क्या सुरक्षित अन्नकोष समाप्त हो गया ?

स्थानिक—जी हाँ, यही नहीं, हमारे मठ में आने वाले २०० अन्न दानों को मार्ग में ही दस्सुओं ने लूट लिया है।

महाभिक्षु—अस्तु। तुम जाओ। मैं इस समस्या को हल करने के उपाय को सोचने के लिये एकान्त चाहता हूँ। (स्थानिक का बाहर जाना)

(बाहर घोड़ों की टापों का स्वर और जनरव)  
'जला दो इस आश्रम को, नष्ट कर दो इस मठ को, पकड़ लो कलिग नरेश को'—

(सैनिक महाभिक्षु को घसीटकर मठद्वार पर ले जाते हैं)।

अशोक—हमारे परास्त शत्रु कलिग नरेश को लौटा दो भिक्षु ! उन्हें तुम्हारे मठ में शरण मिली है।

महाभिक्षु—बौद्धिसत्व किसी को शत्रु नहीं मानता और न किसी का इसलिये स्वागत करता कि वह नरेश है। उसका तो आराध्य और सेव्य है केवल मानव।

अशोक—बड़े प्रगल्भ हो भिक्षु . . .।

महाभिक्षु—यह तुम्हारा भ्रम है मानव।

अशोक—जानते हो ? तुम्हारे सम्मुख कौन खड़ा है और राजकीय नियमों के उलंघन करने का वया परिणाम होता है ?

महाभिक्षु—(हँसकर) मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे सम्मुख एक महाभाग खड़ा है। एक ऐसा महाभाग ! जिसके शस्त्रों के प्रहार ने भिक्षुओं को संतप्त मानवों की सेवा करने का पावन अवसर प्रदान किया है। मैं यह भी जानता हूँ सैनिक ! कि राजकीय नियमों के उलंघन का

परिणाम है मृत्यु । किन्तु जानते हो सैनिक ! भिक्षु मृत्यु में विश्वास नहीं करता । अमरत्व ही उसका आराध्य है ।

अशोक—मैं यह प्रस्ताव सुनने नहीं आया । लौटा, मुझे मेरा शत्रु कालिंग नरेश ।

महाभिक्षु—यह असम्भव है ।

अशोक—मैं तुम्हारे मठ को भस्मभूत कर दूंगा ।

महाभिक्षु—तुम्हारे जैसा दुर्बल आत्मा वाला आदमी ऐसा नहीं कर सकेगा ।

एक और सैनिक—अरे ! मूर्ख ! क्या बकता है ? चक्रवर्ती सम्राट अशोक तुमसे बातें कर रहे हैं ।

महाभिक्षु—यह तो और भी अच्छा है (कुछ देर सोच कर) अच्छा ! ठहरो, मैं तुम्हें समस्त मठवासियों के दर्शन कराता हूँ । स्वयं देख लो कि क्या कोई अब भी तुम्हारा शत्रु है और कोई नरेश भी यहाँ रहता है ?

अशोक—हमें तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार है ।

महाभिक्षु—मुख्य स्थानिक ! अशोक को मठवासियों के दर्शन कराओ ।

स्थानिक—जो आज्ञा गुरुदेव !

(परदा उठता है)

महाभिक्षु—(कुछ क्षत-विक्षत शिशुओं की ओर इशारा करके) देखो अशोक, देखो, इन क्षतविक्षत बालकों को ।

इन्हें हमारे भिक्षुओं ने रणक्षेत्र से प्राप्त किया है। इन भोले-भाले बालकों की माताओं के स्तनों को तुम्हारे निर्भय सैनिकों ने काट डाला, उन्हें नग्न कर उन पर अत्याचार किया और फिर उन माताओं की सत्पुण्य आँखों के सामने उनके हृदय के कुड़े इन बालकों को बुरी तरह घायल कर फेंक दिया। इन भोले-भाले बालकों की डबडबाई आँखें तुमसे पूछ रही हैं अशोक ! कि हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? क्या हम तुम्हारे शत्रु हैं ?

अशोक—(आतुर होकर) बस, बस, रहने दो आगे बढ़ो ।

महाभिक्षु—ये हैं कर्लिंग देश की कुल वधुएँ। तुम्हारी क्रूरता ने इनके माँग का सिंदूर सदा के लिये पोंछ डाला। ये कलियाँ विकसित होने से पूर्व ही कुचल दी गईं। इनके हृदय की भावनाओं को तृप्त होने से पहले ही मर्दन कर डाला गया। इनकी सुनहली कल्पनाएँ सदा के लिए ध्वस्त हो गईं। सुनो ! इनके मूक हृदय का चीत्कार। सुना तुमने ! वह कह रहा है—अरे आततायी तूने हमारे सर्वस्व पर डाका डाला है। परन्तु स्मरण रख, हम भारतीय ललनाओं के हृदय की वेदनाओं की ज्वाला अत्याचार की आघार-शिला पर टिके तेरे समस्त साम्राज्य को स्वाहा कर डालेगी और—

अशोक—आगे बढ़ो भिक्षु ससे आगे मैं नहीं सुनना चाहता ।

**महाभिक्षु**—ये है तुम्हारी साम्राज्य लिप्सा के शिकार कॉलिंग निवासी ! इनके काँपते हुए ओठों की ओर देखो। इनकी भृकुटि पर पड़ी हुई रेखाओं के अध्ययन करने का प्रयत्न करो।

ये शासक हैं। ये कृषक हैं। वे हैं व्यवसायी, कलाकार और साहित्यकार। ये काँपते हुए होठ, भृकुटि पर पड़ी हुई रेखाएँ इनके हृदय की क्षुब्ध भावनाओं का प्रकाशन हैं। ये कह रही हैं अरे ! साम्राज्य लिप्सु ! तुम्हे देश की शांति और व्यवस्था नष्ट करने में क्या सुख मिला ? शस्यश्यामला वसुन्धरा पर लहलहाते हुए खेतों को नष्ट करने में तुम्हे कौनसा गौरव प्राप्त हुआ ? देश के वाणिज्य और व्यवसाय को नष्ट कर दरिद्रता को बढ़ाने में तुम्हे कौनसा यश मिला। मूर्ख ! युग-युग से संचित सभ्यता, संस्कृति और साहित्य को नष्ट करने का तुम्हे क्या अधिकार था ? इन्हें नष्ट कर बर्बरता को उत्पन्न करने में क्या तुम्हे शांति मिलती है ? आततायी ! अन्याई ! बर्बर दस्यु ! तुम्हे धिक्कार है, धिक्कार है !

**अशोक**—ओह ! क्षमा करो महाभिक्षु मैं वस्तुतः आततायी, अन्याई और हिंसक दस्यु हूँ ! मुझे धिक्कार है। मैंने बहुत बड़ा पाप किया है। मैं इसका प्रायश्चित्त कहूँगा, महाभिक्षु ! अवश्य प्रायश्चित्त कहूँगा।

माताओं ! बहनों ! भाइयों भारत के भावी नाग-

रिकों ! मुझे क्षमा करो। मैं भूला हुआ था। अहो ! मैंने तुम्हारे साथ कितना भयंकर अत्याचार किया है ?

(अपने हाथ से शस्त्र फेंक कर)

मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं ? मुझे ऐसे साम्राज्य की लालसा नहीं, जिसकी नींव मानव के त्राण और हिंसा पर हो। मुझे उस समय तक शांति नहीं जब तक कि मैं भारत की खोई हुई विश्व कल्याणमयी संस्कृति को पुनर्जीवित न कर दूँ। अहिंसा और प्रेम का संदेश द्वेष और वैमनस्य संतप्त विश्व में न फैला दूँ। बौधिसत्व ! कलिंग-निवासियों ! मैं शपथपूर्वक आपके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि आजसे मैं भी एक भिक्षु की भाँति देश की गली-गली और कूचे-कूचे में घूम कर विश्व के वायुमंडल को प्रेम, अहिंसा, सत्य, और सेवा की पवित्र भावनाओं से भरने का प्रयत्न करूँगा। प्रेम मेरा साम्राज्य होगा, विश्व कुटुम्बवत् ।

महाभिक्षु—अशोक, तुम धन्य हो।

अशोक—(अपने राजकीय वस्त्र उतारकर) मुझे दीक्षा दो बौधिसत्व ! (भंगवा वस्त्र पहनाये जाते हैं)

महाभिक्षु—बोलो, संघं शरणं गच्छामि . . . .

अशोक—सघं शरणं गच्छामि ।

महाभिक्षु—बुद्धं शरणं गच्छामि ।

अशोक—बुद्धं शरणं गच्छामि ।

महाभिक्षु—धर्मं शरणं गच्छामि ।

अशोक—धर्म शरणं गच्छामि ।

महाभिक्षु—तुम अपने संकल्प में सफल हो नवदीक्षित  
भिक्षु! यही मेरा आशीर्वाद है ।

अशोक—(प्रार्थना करते हुए धीरे-धीरे जाता है)

तमसो मा ज्योतिर्गमय ।

मृत्योर्मा मृत गमय ।

अस तो मा सद गमय ।

(जय-जयकार)

सब—प्रिय दर्शिन अशोक की जय !

महाभिक्षु अशोक की जय !!

अहिंसा और प्रेम अमर हैं ।

(पटाक्षेप)















